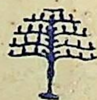
वैदिक-धर्म
आर्यसमाज
प्रश्नोत्तरी

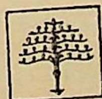


॥ ओ३म् ॥

वैदिकधर्म आर्यसमाज
प्रश्नोत्तरी

बालक तथा बालिकाओं के लिए
धर्म-शिक्षा की सबसे उपयोगी पुस्तक

लेखक
श्री पं० धर्मदेवजी सिद्धान्तालंकार, विद्यावाचस्पति



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली
मूल्य : १·००

भूमिका

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि 'वैदिकधर्म आर्यसमाज प्रश्नोत्तरी' नामक मेरी लघु पुस्तक के पिछले संस्करण की सब प्रतियां समाप्त हो गई हैं और उसके नये संस्करण को निकालने की आवश्यकता हुई है। इस पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद 'A Catechism on Vedic Dharma and Arya Srmaj' नाम से कई वर्ष पूर्व शारदा मन्दिर, नई सड़क, दिल्ली की ओर से स्व० प्रो० सुधाकरजी एम० ए० ने प्रकाशित किया था, जिसकी एक भी प्रति अब उपलब्ध नहीं होती। इसका कर्नाटक भाषा में अनुवाद मैसूर आर्यसमाज की ओर से श्री विश्वमित्रजी सिद्धान्तविशारद ने कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था। अब एक आन्ध्र भाषा-भाषी सज्जन ने, जो बम्बई में रहते हैं, इसके तेलुगु (आन्ध्र भाषा) में अनुवाद की अनुमति मांगी है, जो प्रचारार्थ प्रसन्नता से दे दी गई है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इसे जनता ने उपयोगी पाया है। नये संस्करण में प्रमाणादि में छापे की अशुद्धियों को शुद्ध करने के अतिरिक्त मैंने अपना बनाया 'वैदिक धर्मगीत' वैदिकधर्म की शिक्षाओं विषयक सप्तम पाठ के अन्त में जोड़ दिया है जिसमें वैदिकधर्म की सब मुख्य-मुख्य शिक्षाओं और विशेषताओं का निर्देश है। आशा है, इससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाएगी। पुनर्जन्म की स्मृति के दो नये उदाहरणों को भी पाठ सप्तम में बढ़ा दिया गया है।

—**धर्मदेव विद्यामार्तण्ड**

आनन्द कुटीर
ज्वालापुर (उ० प्र०)

प्रथम भाग

पाठ १

ईश्वर

प्रश्न : सूर्य, चन्द्र, पर्वत, समुद्र आदि संसार की वस्तुओं को किसने बनाया है ?

उत्तर : ईश्वर ने ।

प्र० : क्या इन चीज़ों को कोई मनुष्य व अन्य प्राणी बना सकता है ?

उ० : कभी नहीं । किसी भी प्राणी के अन्दर यह शक्ति नहीं कि इन आश्चर्यजनक चीज़ों को बना सके ।

प्र० : ईश्वर का रूप कैसा है, और वह कहां रहता है ? क्या हम उसे आंखों से देख सकते हैं ?

उ० : ईश्वर सब जगह व्यापक है । कोई ऐसी चीज़ व ऐसी जगह नहीं जिसके अन्दर वह न हो । उसका कोई रूप और शरीर नहीं है, इसलिए हम उसे आंखों से कभी नहीं देख सकते ।

प्र० : क्या ईश्वर हमारे अन्दर भी है ?

उ० : हां, ईश्वर हमारे अन्दर-बाहर, ऊपर-नीचे चारों ओर है । हमें इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए और सदा याद रखना चाहिए ।

प्र० : इस बात को याद रखने से क्या लाभ है ?

उ० : अगर हम इस बात को सदा याद रखें कि परमेश्वर सब

जगह है ग्रौर सब कुछ जानता है तो हम कभी बुरे काम नहीं कर सकते, कभी बुरा विचार तक मन में नहीं ला सकते। जब परमेश्वर—इस सारे संसार का राजा—हमें सब जगह देखने-वाला है, तो हम कैसे झूठ बोल सकते हैं? कैसे चोरी कर सकते हैं? कैसे धोखा दे सकते हैं? ग्रौर कैसे दुराचार कर सकते हैं? इतना ही नहीं, बल्कि इन बुरे कामों के करने का विचार तक कैसे मन में ला सकते हैं? इसलिए धर्म की सबसे बड़ी शिक्षा यही है कि ईश्वर को सब जगह व्यापक मानकर बुरे कामों से सदा दूर रहो। इसीलिए वेद में बताया है—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्"

यजु० ४०।१

ग्रर्थात् इस सारे संसार के सब पदार्थों में ईश्वर व्यापक है।

प्र० : ईश्वर कितने हैं?

उ० : ईश्वर एक ही है, जो सब जगह व्यापक, सब कुछ जाननेवाला ग्रौर सर्वशक्तिमान है। वेद में उपदेश है—

"य एक इत् तमुष्टुहि"

ऋग्वेद ६।४५।६

जो परमेश्वर एक ही है, उसीकी, हे मनुष्य! तू सदा स्तुति व भजन कर। उपनिषद् का वचन भी याद रखो—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः।
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

श्वेताश्वतर उप०

परमेश्वर एक ही है, वह सब प्राणियों के ग्रन्दर छिपा हुग्रा है, वह सर्वव्यापक ग्रौर सब प्राणियों की ग्रात्मा के भीतर विद्यमान है।

पाठ २

वेद

प्रश्न : वेद किसको कहते हैं ?

उत्तर : वेद शब्द का अर्थ—ज्ञान है।

प्र० : वेद कितने हैं और उनमें क्या बतलाया गया है ?

उ० : वेद चार हैं, जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। मनुष्यों को किस तरह के काम करने चाहिए; परिवार, समाज, देश और संसार की उन्नति कैसे हो सकती है; तथा संसार में शांति कैसे रह सकती है; ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिए, इत्यादि सब बातें वेदों में बताई गई हैं। उनसे सबको लाभ पहुंच सकता है।

प्र० : वेदों का ज्ञान किसने और क्यों दिया ?

उ० : वेदों का ज्ञान ईश्वर ने दिया, जो सर्वज्ञ अर्थात् सब कुछ जाननेवाला है। उसने यह ज्ञान इसलिए दिया कि सबको सुख-शांति और आनन्द प्राप्त हो सके। ईश्वर माता-पिता के समान हम सबपर दया करनेवाला है जैसे माता-पिता बच्चों की भलाई के लिए उन्हें अच्छी बातें सिखाते हैं, वैसे ही हम सबके परम पिता और दयालु माता—ईश्वर—ने हमारे कल्याण के लिए वेदों का ज्ञान दिया, क्योंकि वह हम सबकी भलाई चाहता है।

प्र० : वेदों का ज्ञान ईश्वर ने कब दिया ?

उ० : यह ज्ञान ईश्वर ने मनुष्य-सृष्टि के शुरू में दिया था। यदि पीछे देता तो पूर्व-सृष्टि उसके लाभ से वंचित रहती।

प्र० : वेदों का ज्ञान ईश्वर ने क्यों और किसको दिया ?

उ० : वेदों का ज्ञान ईश्वर ने मनुष्य-सृष्टि के शुरू में ऋषियों को दिया, क्योंकि वे उस ज्ञान के बिना कुछ नहीं सीख सकते थे और न समझ सकते थे कि कौन-से काम करने चाहिए। जब तक हमें कोई सिखलानेवाला न हो तब तक हम लिखना-पढ़ना नहीं सीख सकते। सृष्टि के शुरू में सिवाय ईश्वर के कौन मनुष्यों को उपदेश देता? उन चार ऋषियों के नाम, जिनको मनुष्य-सृष्टि के शुरू में ईश्वर ने वेदों का ज्ञान दिया--अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा थे।

प्र० : क्या ईश्वर ने कागज़, कलम और स्याही लेकर लिख दिया, अथवा वह वेद-ज्ञान उन्हें कैसे दिया?

उ० : ईश्वर सबके अन्दर व्यापक है। ऋषियों के हृदय पवित्र थे। ईश्वर ने उनके हृदयों में वेदों का ज्ञान भर दिया। ईश्वर को सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान होने के कारण न कागज़, कलम, स्याही की ज़रूरत है और न मुंह से बोलने की। बस हृदयों को प्रेरणा देना ज्ञान भरने के लिए पर्याप्त था।

प्र० : क्या ईश्वर का ज्ञान बदलता रहा है?

उ० : नहीं! ईश्वर का ज्ञान सदा एकरस अर्थात् ठीक वैसा ही बना रहता है। उसे अपना ज्ञान बदलने की कोई ज़रूरत नहीं होती।

प्र० : क्या वेद किसी विशेष जाति व देश के मनुष्यों के लिए हैं?

उ० : नहीं, वे सारे संसार के मनुष्यों के लिए हैं, क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य यही है कि सब प्राणी सुखी हो सकें। ईश्वर सारे संसार का पिता है, न कि किसी विशेष जाति व देश के लोगों का। इसलिए वेद पढ़ने का अधिकार उन सब मनुष्यों को है जो अच्छा बनना चाहते हैं। यही बात वेदों में स्वयं ईश्वर ने बताई है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय चारणाय च स्वाय ।।
यजु० २६।२

इसका अर्थ यह है कि सबकी भलाई करनेवाले वेदज्ञान को मैंने सारे मनुष्यों के कल्याण के लिए दिया है। इसलिए ऋषि दयानन्दजी की इस आज्ञा को कभी न भूलो और सदा वेद का स्वाध्याय किया करो—"वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

पाठ ३

वैदिक साहित्य ऋषिकृत ग्रन्थ

(उपवेद, ब्राह्मण, वेदांग, उपांग तथा उपनिषदें)

प्रश्न : उपवेद कितने और कौन-कौन से हैं ?

उत्तर : उपवेद चार हैं। उनके नाम आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अथर्वेद हैं। आयुर्वेद में शरीर की रक्षा और आरोग्य व तन्दुरुस्ती के उपाय, दवाइयों के गुण और बीमारियों के इलाज आदि का वर्णन है। आजकल आयुर्वेद के ग्रन्थों में से चरक-संहिता और सुश्रुत-संहिता प्रसिद्ध हैं। धनुर्वेद यजुर्वेद का उपवेद है और उसमें धनुष-बाण चलाने आदि का सारा विषय है। गन्धर्ववेद सामवेद का उपवेद है और उसमें संगीत का विषय है। अथर्ववेद का उपवेद अथर्वेद है जिसमें शिल्प-शास्त्र का विषय है। कइयों के मत में आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है, क्योंकि ऋग्वेद की तरह अथर्ववेद में भी ओषधि-विषयक कई सूक्त पाए जाते हैं।

प्र० : वेदों के पुराने भाष्य कौन-से हैं, जिनसे वेदों के अर्थ समझने में सहायता मिल सके ?

उ० : वेदों के पुराने भाष्य ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं, जिन्हें महीदास, ऐतरेय, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों ने बनाया। इनमें से प्रसिद्ध ये हैं—

ऋग्वेद का ब्राह्मण—ऐतरेय ब्राह्मण,

यजुर्वेद का ब्राह्मण—शतपथ ब्रह्मण,

सामवेद का ब्रह्मण—साम व ताण्ड्य महाब्राह्मण,

अथर्ववेद का ब्राह्मण—गोपथ ब्राह्मण।

इनमें वेद में आए शब्दों के अर्थ बताए गए हैं तथा यज्ञों में उनका प्रयोग बताया गया है।

प्र० : वेदांग कितने और कौन-कौन-से हैं ?

उ० : वेदांग छः हैं, इनके नाम ये हैं—

शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और कल्प। इनके पढ़ने से वेदों के समझने में बड़ी सहायता मिलती है। व्याकरण ग्रन्थों में पाणिनिमुनि कृत अष्टाध्यायी और पतञ्जलिमुनि कृत महाभाष्य प्रसिद्ध हैं। यास्काचार्य कृत निरुक्त अत्यन्त प्रसिद्ध और उपयोगी है। पिंगलमुनि कृत छन्दशास्त्र बड़ा प्रसिद्ध है।

प्र० : उपांग कौन-कौन-से हैं, और उन्हें किन ऋषियों ने बनाया ?

उ० : उपांगों को दर्शन-शास्त्र व शास्त्र के नाम से भी कहा जाता है। ये छः हैं, जिनमें आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, जगत् की उत्पत्ति और मुक्ति इत्यादि कठिन प्रश्नों पर विचार किया गया है। इनके नाम निम्नलिखित हैं—

गौतममुनि कृत—न्याय-शास्त्र,

कणादमुनि कृत—वैशेषिक-शास्त्र,

कपिलमुनि कृत—सांख्य-शास्त्र,

पतञ्जलिमुनि कृत—योग-शास्त्र,

जैमिनिमुनि कृत—पूर्वमीमांसा-शास्त्र,

वेदव्यासमुनि कृत—उत्तरमीमांसा-शास्त्र व वेदान्त-शास्त्र।

प्र० : ऋषिकृत उपनिषदें कौन-कौन-सी और कितनी हैं तथा उनमें किस विषय का वर्णन है ?

उ० : वैसे तो आजकल १५० के लगभग उपनिषदें पाई जाती हैं पर प्रामाणिक ऋषिकृत उपनिषदें ११ हैं, जिनके नाम ये हैं—

१. ईश, २. केन, ३. कठ, ४. प्रश्न ५. मुण्डक, ६. माण्डूक्य, ७. ऐतरेय, ८. तैत्तिरीय, ९. छान्दोग्य, १०. बृहदारण्यक ११. श्वेताश्वतर।

इनमें ऋषियों ने वेदों और अपने अनुभव के आधार पर ब्रह्म-विद्या का उपदेश दिया है, जो बड़ा शान्ति देनेवाला है।

प्र० : धर्मशास्त्र कितने हैं और उनमें से प्रामाणिक कौन-कौन से हैं ?

उ० : जैसे पहले बताया जा चुका है, सबसे अधिक प्रामाणिक और मानने योग्य धर्मशास्त्र तो वेद ही हैं, उससे विरुद्ध वचन चाहे किसी भी पुस्तक में पाए जाएं, वे मानने योग्य नहीं हो सकते। पुराने ऋषियों के नाम से धूर्त-स्वार्थी लोगों ने कई पुस्तकें लिख डाली हैं तथा अच्छे ग्रंथों में भी कई प्रक्षेप व मिलावटें कर डाली हैं जिनके कारण यह पहचानना कठिन हो गया है कि कौन-सा हिस्सा असली और कौन-सा बनावटी है—तो भी विचारपूर्वक पढ़ने से यह बात मालूम हो सकती है। धर्मशास्त्रों व स्मृतियों में पहला स्थान मनुस्मृति का है जिसे वेद के आधार पर मनु महाराज ने बनाया था, पर इसमें भी समय-समय पर बहुत-सी मिलावटें होती रही हैं, इसलिए प्रक्षेप को छोड़कर वेदानुकूल उसके वचनों को ही मानना चाहिए, औरों को नहीं। वसिष्ठ,

गौतम, अत्रि, बौधायन, प्रजापति, हारीत, यम, पराशर आदि के नाम पर भी बहुत-सी स्मृतियां आजकल पाई जाती हैं, पर इनकी अच्छी बातें सब मनुस्मृति में ही पाई जाने और बहुत-सी बातें वेद और बुद्धि के विरुद्ध होने तथा परस्पर विरुद्ध होने से उनको ऋषिकृत नहीं माना जा सकता, न उन्हें धर्म के विषय में प्रमाण समझा जा सकता है। आपस्तम्ब, पारस्कर, आश्वलायन, गोभिल, जैमिनि, सांख्यायन आदि कृत गृह्यसूत्र भी पाए जाते हैं, जिनमें संस्कारों का प्रतिपादन है। इनको भी प्रायः स्मृतियों के नामों से कहा जाता है। वेद-विरुद्ध भाग छोड़कर ये सूत्र-ग्रन्थ संस्कार तथा आश्रम-धर्म आदि के विषय में उपयोगी हैं। वेदों की शाखाएं तथा अन्य बहुत-से प्राचीन ग्रंथ लुप्तप्राय हो चुके हैं जिनको खोजने की ज़रूरत है।

पाठ ४

धर्म

प्रश्न : धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : अच्छे कर्मों के आचरण को धर्म कहते हैं। इससे मनुष्यों की उन्नति होती है। धर्म से ही मनुष्य-समाज का धारण व रक्षण होता है। धर्म का आचरण करने से ही सच्चा सुख प्राप्त होता है।

प्र० : धर्म शब्द का अर्थ पुराने ऋषि-मुनियों ने क्या बताया है ?

उ० : महाभारत को बनानेवाले प्रसिद्ध ऋषि वेदव्यासजी ने धर्म शब्द का अर्थ यों बताया है—

धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ।।

इसका मतलब हम ऊपर बता चुके हैं कि जो सबका धारण करनेवाला हो या जिससे सबकी सच्ची उन्नति हो सके तथा जो सबको प्रेम द्वारा मिला देनेवाला हो उसे ही धर्म कहना चाहिए। जिन बातों या रीति-रिवाजों से समाज को हानि पहुंचती हो, जिनसे लोगों में वैर-विरोध व भेदभाव बढ़ता हो, उन्हें धर्म समझना हमारी भूल है।

प्र० : धर्म और मत में क्या भेद है ?

उ० : वैशेषिक-शास्त्र के बनानेवाले कणाद मुनि ने धर्म का लक्षण यों बतलाया है—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः । वै० १।२

(यतः) जिससे (अभ्युदय) इस संसार की उन्नति और (निःश्रेयससिद्धिः) मुक्ति अथवा हमेशा एक जैसे रहने-वाले आनन्द की प्राप्ति हो, (स धर्मः) वह धर्म कहाता है। इसलिए वे सब उपाय, जिनसे इस संसार की उन्नति के साथ-साथ शान्ति और आनन्द प्राप्त होवें, धर्म कहाते हैं। धर्म का सम्बन्ध हमारे जीवन के सब अंगों के साथ है। शरीर, मन, आत्मा, समाज, देश और संसार की उन्नति के सब उपायों को धर्म कह सकते हैं। किन्तु मत में कुछ सिद्धान्तों का, जिन्हें किन्हीं व्यक्तियों ने प्रचलित किया हो, भाव आता है और उसके मानने में साम्प्रदायिकता का दोष आता है।

प्र० : धर्म के मान्य लक्षण कौन-से हैं जिन्हें सब मनुष्यों को धारण करना चाहिए ?

उ० : धर्म के दस लक्षण मनुस्मृति के बनानेवाले मनु महाराज ने यों बताए हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। मनु० ६ ।।६२।।

धृतिः—धैर्य, अर्थात् कष्ट आने पर भी कभी न घबराना ।

क्षमा—किसीसे अपराध हो जाने पर कम से कम तीन वार उसे माफ कर देना ।

दमः—अपने मन को काबू में रखना ।

अस्तेयम्—किसी दूसरे की चीज़ को न चुराना और न मन में ही ऐसा विचार लाना ।

शौचम्—हर तरह से पवित्र रहना । रोज़ नहाना; साफ कपड़े पहनना, अपनी जगह साफ रखना तथा मन और वाणी को हमेशा पवित्र बनाकर रखना ।

इन्द्रियनिग्रहः—आंख, कान, वाणी आदि इन्द्रियों को अपने वश में रखना और उनके गुलाम न बन जाना ।

धीः—अपनी बुद्धि को बढ़ाने की सदा कोशिश करना । गांजा, भांग, अफीम, शराब आदि जिन चीज़ों के सेवन से बुद्धि खराब हो जाती है, उन्हें कभी न सेवन करना ।

सत्यम्—सदा सच बोलना । कितनी भी आपत्ति व प्रलोभन क्यों न आएं, कभी सचाई को न छोड़ना । भूलकर भी झूठ न बोलना, चाहे झूठ बोलने से कितना ही धन मिलता हो । सत्य को ही शास्त्रों में सबसे बड़ा धर्म और झूठ को सबसे बड़ा पाप बतलाया है । याद रखो—

नास्ति सत्यात्परो धर्मः नानृतात्पातकं परम् ।।

इसका अर्थ हमने ऊपर बताया है । महाराज रामचन्द्र,

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, ऋषि दयानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्दजी, महात्मा गांधीजी आदि सब सत्य के ही कारण सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। इन महापुरुषों जैसे सत्यवादी बनने का दृढ़ संकल्प करो।

अक्रोध—क्रोध व गुस्सा न करना। क्रोध से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उसे यह नहीं सूझता कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। मात-पिता, गुरु तथा दूसरे पूजनीय व्यक्तियों का भी आदमी क्रोध में आकर अपमान कर बैठता है। ऐसे-ऐसे बुरे शब्द उसके मुंह से निकल जाते हैं जिनसे दूसरे का दिल दुखता है और पीछे उसे स्वयं पछताना पड़ता है। इसलिए क्रोध से सदा बचना चाहिए, और क्रोध आए तो रोकने की कोशिश करनी चाहिए। ठण्डा पानी पी लेने व उस जगह से उठकर दूसरी जगह चले जाने से भी क्रोध कभी-कभी शान्त हो जाता है।

ये धर्म के दस लक्षण हैं जिनसे मनुष्य की उन्नति होती है और वह सबका प्यारा बनता हुआ शान्ति प्राप्त करता है। हरेक बालक-बालिका का कर्तव्य है कि इन धर्म के दस लक्षणों को अपने जीवन में धारण करने का सदा प्रयत्न करे।

प्र० : धर्म कितने प्रकार के होते हैं ?

उ० : धर्म कई प्रकार के होते हैं : १. वैयक्तिक धर्म, २. पारिवारिक धर्म, ३. सामाजिक धर्म और, ४. राष्ट्रीय धर्म।

प्र० : वैयक्तिक तथा पारिवारिक धर्म क्या हैं ?

उ० : वैयक्तिक धर्म—जिनका हरेक मनुष्य के साथ सम्बन्ध हो या जिनके पालन करने से मनुष्य की हर तरह उन्नति हो सके। ऊपर धर्म के भिन्न-भिन्न दस लक्षणों को बताया गया है, उनको

वैयक्तिक धर्मों में गिन सकते हैं।

पारिवारिक धर्म—माता-पिता, पत्नी-पुत्र, भाई-बहन तथा परिवार के दूसरे लोगों के साथ जिन धर्मों का सम्बन्ध हो उन्हें पारिवारिक धर्म कहते हैं। उनको जानने और पालन करने से ही प्रेम रह सकता है और सुख प्राप्त हो सकता है। जहां परिवार के सब लोग बड़ों का मान करते और उनकी आज्ञा मानते हों, एक-दूसरे के साथ प्रेम करते और खुश रखने का यत्न करते हों, एक-दूसरे की सहायता करते और कष्ट दूर करने की कोशिश करते हों, यही पारिवारिक धर्म का पालन होता है। ऐसा परिवार ही सदा सुखी रहता है।

प्र० : सामाजिक धर्म क्या है ?

उ० : मनुष्य अकेला रहना पसन्द नहीं करता। हमेशा अकेले रहने से उसकी हर तरह की उन्नति नहीं हो सकती, इसलिए वह समाज में रहता और बढ़ता है। जिस समाज में वह रहता है उसके प्रति उसके कई कर्तव्य होते हैं, उन्हें ही सामाजिक धर्म कहते हैं। हरेक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार समाज की सेवा करे। सबकी उन्नति के लिए प्रयत्न करे। कोई ऐसा काम न करे जिससे समाज को हानि पहुंचती हो। सबको अपना भाई और मित्र समझे। सबकी भलाई में अपनी भलाई समझे। समाज में जो बुरे रीति-रिवाज हों उनको हटाने का सदा प्रयत्न करे। अपना तन, मन समाज की उन्नति और सेवा में लगा दे।

प्र० : राष्ट्रीय धर्म क्या होते हैं ?

उ० : जो जिस देश में पैदा होता है, उसके प्रति भी उसके बहुत-से कर्तव्य होते हैं। उन्हींको राष्ट्रीय धर्म कहते हैं। अपने

देश की भलाई का विचार हरेक मनुष्य को अपने मन में रखना चाहिए। देश की हर तरह से उन्नति हो, इसके लिए अपनी शक्ति के अनुसार सदा काम करना चाहिए। देश के लोगों के अन्दर एकता लाने का यत्न सबको करना चाहिए। कुछ बातों में मतभेद के कारण आपस में लड़ाई-झगड़ा न करना चाहिए। देश की उन्नति के लिए एक भाषा का होना ज़रूरी है। (जो भारतवर्ष में हिन्दी ही हो सकती है)। उसे हरेक को ज़रूर सीखना चाहिए। जहां तक हो सके स्वदेशी चीज़ों को ही काम में लाना चाहिए। सदा शुद्ध, स्वदेशी कपड़े (खद्दर) ही पहनने का व्रत लेना चाहिए क्योंकि विदेशी वस्त्र पहनने से हमारे देश के करोड़ों रुपये विदेशों में चले जाते हैं। इससे हमारा देश प्रतिदिन गरीब होता जाएगा। देश के अन्दर शिल्प व कारीगरी वगैरह बढ़ाने का भी सबको प्रयत्न करना चाहिए। मतलब यह कि मातृभूमि की सेवा हर तरह से करना और उसे स्वावलम्बी और स्वतन्त्र बनाए रखने का यत्न करना—यह हम सबका कर्तव्य है। प्रत्येक बालक-बालिका को चाहिए कि अपने माता पिता के समान भारतमाता के साथ प्यार करे और उसकी सेवा में हर तरह से सदा तत्पर रहे। इसके लिए महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, लोकमान्य तिलक, ऋषि दयानन्द, महात्मा गांधी जैसे सच्चे देश-भक्तों के जीवन-चरित्रों को पढ़ते रहना चाहिए।

द्वितीय भाग

पाठ ५

वर्ण-धर्म

प्रश्न : मनुष्य-समाज को मुख्यतया कितने विभागों में बांटा हुआ है और उन्हें क्या कहते हैं ?

उत्तर : मनुष्य-समाज को शास्त्रों में चार विभागों में बांटा गया है और उन्हें वर्ण कहते हैं।

प्र० : वर्ण शब्द का अर्थ क्या है ?

उ० : वर्ण शब्द का अर्थ यह है कि जिसे उसके गुण-कर्म देखकर चुना जाए।

प्र० : वर्ण कितने हैं, और उनके क्या नाम हैं ?

उ० : वर्ण चार हैं और उनके नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं।

प्र० : ब्राह्मण वर्ण के धर्म क्या हैं और कौन मनुष्य ब्राह्मण कहला सकता है ?

उ० : ब्राह्मण शब्द का अर्थ है, जो ब्रह्म अर्थात् ईश्वर और वेद के स्वरूप को जाननेवाला हो। कहा भी है—

"**ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः**" ब्राह्मण के मुख्य धर्म मनु महाराज ने वेद के आधार पर यों बताए हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

मनु० १।८८

वै-१

अर्थात् ब्राह्मण के छः मुख्य धर्म या कर्म बताए गए हैं—
१. वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना, २. स्वयं पढ़ के सत्य विद्या को पढ़ाना वा प्रचार करना, ३. स्वयं यज्ञ करना (जिनकी व्याख्या आगे की जाएगी), ४. दूसरों को यज्ञ कराना जिससे सबका कल्याण हो सके, ५. अपनी शक्ति के अनुसार दान देना, ६. श्रद्धापूर्वक दिए जाने पर उसे, मर्यादा के अन्दर रहते हुए, प्रेम से स्वीकार करना। जो इन धर्मों का भली भांति पालन करता हुआ समाज की सेवा करता है तथा सबकी भलाई के लिए प्रयत्न करता है, वही विद्वान, धर्मात्मा, सदाचारी और त्यागी पुरुष ब्राह्मण कहला सकता है।

प्र० : वे कौन-से गुण हैं जो ब्राह्मण के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं और जिनके बिना कोई मनुष्य ब्राह्मण कहला ही नहीं सकता, चाहे वह कैसे ही ऊंचे कुल में पैदा हुआ हो ?

उ० : इन गुणों को वेद-शास्त्रों के आधार पर महाभारत में यों गिनाया गया है—

सत्यं दानं क्षमा शीलम्, आनृशंस्यं त्रपाऽघृणा।
तपश्च दृश्यते यत्र, स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

—शान्ति पर्व, अ० १८८

अर्थात् जिसके अन्दर निम्नलिखित गुण हों, वह ब्राह्मण कहलाता है—

१. सत्यम्—सचाई, अर्थात् मन, वचन, कर्म से सदा सत्य के व्रत का पालन करना।
२. दानम्—अपनी शक्ति के अनुसार गरीबों, अनाथों और असमर्थों की सहायता करना और उत्तम संस्थाओं को धन देना।
३. क्षमा—किसीसे अपराध हो जाने पर कम से कम तीन बार

क्षमा करना।

४. शीलम्—उत्तम, प्रेममय, मधुर स्वभाव को धारण करना।

५. आनृशंस्यम्—क्रूरता से रहित होना। मनुष्य और पशु सबके साथ कोमलता और प्रेम से बरतना।

६. त्रपा—दुष्कर्म करने में लज्जा रखते हुए उनसे अलग रहना।

७. अघृणा—दया भाव को सदा धारण करना।

८. तप—सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमान इत्यादि को सहन करना तथा भयंकर आपत्ति के आने पर भी न घबराना और धर्म के मार्ग को न छोड़ना।

इसी विषय को भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण महाराज ने यों कहा है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥ १८।४२॥

अर्थात् (शमः) शान्ति, (दमः) मन को वश में रखना, (तपः) सर्दी-गर्मी आदि को सहन करते हुए धर्मकार्य को लगातार करते चले जाना, (शौचम्) सफाई व सब तरह की पवित्रता, (क्षान्ति) क्षमा, (आर्जवम्) सरलता, जो कुछ मन में हो उसे ही ज़बान से कहना और उसीके अनुसार काम करना, (ज्ञानम्) उत्तम ज्ञान को प्राप्त करना, (विज्ञानम्) परमात्मा, आत्मा आदि विषयक विशेष ज्ञान को प्राप्त करना—ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं, जिनके बिना कोई ब्राह्मण कहला ही नहीं सकता।

प्र० : ब्राह्मण की उपमा शरीर के किस अंग के साथ दी जा सकती है, जिससे उसके धर्मों का बोध हो सके?

उ० : वेदों के सुप्रसिद्ध पुरुष-सूक्त में कहा है—**ब्राह्मणोस्यऽस्य**

मुखमासीत् । यजु०, ३१।११, अर्थात् मनुष्य समाज को एक पुरुष के रूप में समझा जाए तो ब्राह्मण इस पुरुष के मुख के समान है। जिस प्रकार मुख भाग में आंख, नाक, कान आदि ज्ञानेन्द्रियां रहती हैं और कर्मेन्द्रियों में से वाणी है; उसी तरह मनुष्य समाज में जो पुरुष सारे उत्तम ज्ञान को प्राप्त करके वाणी के द्वारा उसका प्रचार करते हैं, जो मुख भाग के समान स्वार्थत्यागी और तपस्वी होते हैं, वही ब्राह्मण कहलाते हैं। मुख में जो कुछ डाला जाता है, उसे मुख अपने पास न रखकर आगे पहुंचा देता है। इसी तरह मुख-भाग शरीर में बड़ा तपस्वी हिस्सा है। कठिन से कठिन सर्दी में भी यह नंगा ही रहता है। ऐसे ही ब्राह्मणों को सर्दी-गर्मी आदि सहने का अभ्यास करना चाहिए।

प्र० : **क्षत्रियों** का धर्म क्या है, और क्षत्रिय शब्द का अर्थ क्या है?

उ० : क्षत्रिय शब्द का अर्थ है जो आपत्ति से रक्षा करने में समर्थ हो (क्षतात् त्रायत इति)। इस धर्म के पालन करने के लिए उसके अन्दर बड़ी शक्ति होनी चाहिए। उसे बलवान्, शूरवीर, साहसी और निर्भय होना चाहिए। वेदों में क्षत्रियों की उपमा बाहुओं से दी गई है।

बाहू राजन्यः कृतः । यजु०, ३१।११

जिस प्रकार शरीर में बाहु दुष्टों के आक्रमणों से हमारी रक्षा करते हैं, ऐसे ही जो वीर पुरुष समाज और देश की—दुष्टों से रक्षा करने में समर्थ होकर ज़रूरत पड़ने पर लड़ाई करते हैं अथवा देश के शासन-विभाग में सहायता करते हैं उन्हें क्षत्रिय कहा जाता है—उनके लिए भी वेदादि शास्त्रों को और उत्तम लौकिक विद्याओं को सीखना, यज्ञ करना, दान देना,

धर्मात्मा बनते हुए प्रजाओं की रक्षा करना, शूर-वीर, धैर्य-धारी और तेजस्वी होना, लड़ाई के मैदान से न भागना इत्यादि बड़ा ज़रूरी है। ये क्षत्रियों के मुख्य धर्म और कर्म हैं। सच्चे क्षत्रियों के बिना राजकार्य चल ही नहीं सकता।

प्र० : वैश्य शब्द का अर्थ क्या है, और वैश्यों के क्या धर्म हैं?

उ० : वैश्य शब्द का अर्थ है, जो व्यापार इत्यादि के लिए एक जगह से दूसरी जगह, या एक देश से दूसरे देश में प्रवेश करे (**विशति देशाद् देशान्तरम् इति**)। जो व्यापार खेती आदि धर्मयुक्त साधनों द्वारा (न कि धोखा, चोरी, जुए आदि से) धन को कमाकर उसे समाज और देश की उन्नति के लिए लगाते हैं, जो पशुओं की रक्षा करते हैं, जो वेदादि शास्त्रों तथा उत्तम विद्याओं और अनेक देश-भाषाओं को सीखते, यज्ञ करते और दान देते हैं वे वैश्य कहलाते हैं।

प्र० : वैश्य की उपमा शरीर के किस भाग से दी जा सकती है?

उ० : वैश्य की उपमा शरीर के बीच के हिस्से से दी जा सकती है, जिसमें पेट, जांघ वगैरह आ जाते हैं। इसलिए वेद में कहा है-

मध्यं तदस्य यद् वैश्यः। *अथर्व०, १६।१।६*

अथवा, **ऊरू तदस्य यद् वैश्यः।** *यजुर्वेद, ३१।११*

शरीर के बीच के हिस्से पेट आदि में सब रस इकट्ठे होते हैं। वहां से उन्हें शरीर के अन्य भागों में भेज दिया जाता है। इसी तरह वैश्य सारे धन को इकट्ठा करके, जहां-जहां समाज और देश की उन्नति के लिए उसे लगाने की ज़रूरत होती है, वहां-वहां लगा देता है। इस तरह वैश्य समाज की बड़ी भारी सेवा करता है, क्योंकि धन के बिना कोई उत्तम संस्था, पाठशाला और अनाथालय आदि नहीं चल सकते।

प्र० : शूद्र कौन है और उसका क्या धर्म है ?

उ० : जिसकी बुद्धि ज़्यादा तेज़ न हो, इस कारण जो वेद-शास्त्र वगैरह की ऊंची बातें न समझ सकता हो; जिसमें शोक, मोह वगैरह मूर्खों के लक्षण पाए जाते हों; जो पेट भरने के लिए इधर-उधर दौड़े, उसे शूद्र कहते हैं; चाहे उसका जन्म किसी भी कुल में क्यों न हुआ हो। (**शुचा द्रवतीति शूद्रः अथवा शु-आशु द्रवतीति शूद्रः।**) शूद्र का काम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सब तरह से सेवा करना है। शूद्र को अपने अन्दर किसी तरह का अभिमान न रखकर रसोई बनाना इत्यादि सेवा कार्यों में लगा रहना चाहिए। सच्चे शूद्रों के बिना भी समाज का गुज़ारा नहीं हो सकता, इसलिए उनके साथ प्रेम से व्यवहार करना चाहिए। उनको उठाने का सदा यत्न करते रहना चाहिए, जिससे उनके अन्दर सफाई, सचाई, वगैरह गुण आ सकें तथा वे बुरी आदतों को छोड़ सकें।

प्र० : शूद्र की उपमा शरीर के किस भाग के साथ दी जाती है ?

उ० : शूद्र की उपमा वेद में पैरों से दी गई है। (**पद्भ्यां शूद्रो अजायत।** *यजु० ३१।११*) जिस प्रकार हम पैरों के बिना चल नहीं सकते, उसी प्रकार सच्चे शूद्रों व सेवकों के बिना मनुष्य-समाज का गुज़ारा नहीं हो सकता। जो विशेष मनुष्य-ज्ञान और ऊंची बुद्धि न रखते हुए पेट भरने के लिए पैरों की सहायता से इधर-उधर जाते और प्रेम से सबकी सेवा करते हों, उनको शूद्र कहते हैं। सेवा करने के लिए तपस्वी होना अर्थात् सर्दी-गर्मी आदि को सहन करना बड़ा ज़रूरी है। इसलिए वर्णधर्मों को संक्षेप से बतलाते हुए यजुर्वेद में कहा है कि—

ब्रह्मणे ब्राह्मणम् क्षत्राय राजन्यम् ।
मरुद्भ्यो वैश्यम् । तपसे शूद्रम् ।। यजु०, ३०।५

अर्थात् ज्ञान के प्रचार के लिए ब्राह्मण को लगाओ । बल के काम के लिए क्षत्रियों को लगाओ । सब मनुष्यों के लिए ज़रूरी धन के कमाने के वास्ते वैश्य को, और सर्दी-गर्मी को सहन करके सेवा करने के काम में शूद्र को लगाओ ।

प्र० : मनुष्य समाज को इन चार विभागों में बांटने और शरीर के हिस्सों के साथ उनकी उपमा देने का प्रयोजन क्या है ?

उ० : इसका प्रयोजन यह है कि सब मनुष्य मिल करके अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार समाज की सेवा करें, परन्तु सबमें प्रेम का भाव हो । कोई अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा न समझे । मनुष्य-समाज की भलाई और उन्नति के लिए वर्णों का होना ज़रूरी है । किसी एक वर्ण के बिना भी गुज़ारा नहीं हो सकता । शरीर के सब हिस्से मुख, बाहु, पेट और पैर आदि एक जैसे ज़रूरी हैं, और सब अपने-अपने काम को करते हैं; उनमें कोई ऊंच-नीच भाव नहीं रहता। इसी तरह मनुष्य-समाज के अन्दर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में एक-दूसरे के साथ प्रेम और सहयोग वा मेल होना समाज की उन्नति और शान्ति के लिए बड़ा ज़रूरी है।

प्र० : वर्ण चार ही हैं या अधिक ? आजकल तो हमारे देश में चार-पांच हज़ार जातियां, उपजातियां पाई जाती हैं । क्या उन्हें मानना चाहिए ?

उ० : वेद-शास्त्र में केवल चार ही वर्ण बताए गए हैं; इसलिए किसी-को भी पंचम कहना, उन्हें अस्पृश्य व अछूत मानना और घृणा की दृष्टि से देखना आदि सब बातें बिलकुल वेद-विरुद्ध और

हानिकारक हैं। मनुस्मृति में भी साफ चार वर्ण बताते हुए कह दिया है—**नास्ति तु पंचमः।** १०।४—कोई पांचवां वर्ण नहीं। पांच छः करोड़ भाइयों को पंचम समझना कितनी भारी भूल है। यही बात चार-पांच हज़ार जातियों, उपजातियों के बारे में भी कही जा सकती है।

प्र० : वर्ण और जाति शब्द का क्या एक ही अर्थ है? क्या वेदादि सत्य शास्त्रों में भी चार जातियां मानी गई हैं? यदि नहीं, तो वर्ण और जातियों में क्या अन्तर है?

उ० : वर्ण और जाति का एक ही अर्थ नहीं है। मनुष्यों में केवल एक ही जाति है, इसे पुरुष-जाति और स्त्री-जाति—इस तरह दो जातियों में बांट सकते हैं। जाति को शक्ल से ही पहचाना जा सकता है, इसलिए उसका लक्षण न्यायशास्त्र २।२।७० में गौतम मुनि ने "**आकृतिर्जातिलिङ्गाख्या**" ऐसा किया है, जिसका अर्थ ऊपर दिया है। ऐसी जाति को हम बदल नहीं सकते। घोड़ा गधा, बैल, गाय आदि को पशु-जातियां कहते हैं, क्योंकि इन्हें शक्ल से पहचानकर अलग-अलग किया जा सकता है, तथा ये जातियां इस जन्म में बदल नहीं सकतीं। घोड़ा गधा नहीं बन सकता, न गधा घोड़ा बन सकता है; किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों में इस तरह का भेद नहीं जिससे उन्हें शक्ल से ही पहचानकर अलग-अलग किया जा सके। सबके शरीर और अंग वगैरह तथा उनके कार्य एक ही जैसे हैं, इसलिए घोड़े, गधे, गाय, बैल आदि की तरह उन्हें शक्ल से पहचानना सर्वथा असम्भव है। पुरुष और स्त्री-जाति को अलग-अलग जाति कहा जा सकता है, क्योंकि उन्हें शक्ल से पहचाना जा सकता है; और इस जन्म में न पुरुष स्त्री बन सकता है, न स्त्री पुरुष।

चार वर्णों का परस्पर भेद उनके गुण-कर्म के कारण है न कि जन्म के कारण। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रियादि वर्ण हैं, न कि जातियां।

प्र० : तो क्या एक शूद्र कुल का पुरुष ब्राह्मण बन सकता है ? और क्या एक ब्राह्मण कुल का पुरुष भी शूद्र हो सकता है ?

उ० : हां, यदि एक शूद्र कुल में पैदा हुए पुरुष के अन्दर ब्राह्मणों के गुण, कर्म (जिन्हें ऊपर बताया जा चुका है) पाए जाते हों, अर्थात् जो विद्वान, धर्मात्मा, सदाचारी, त्यागी और तपस्वी होकर अध्यापक, उपदेशक आदि का कार्य करता है, वह सचमुच इसी जन्म में ब्राह्मण कहलाता है। इसके विपरीत, जो ब्राह्मण कुल में पैदा होकर भी ज्ञान और बुद्धि से रहित है, जिसका जीवन पवित्र नहीं है, जो किसी तरह रसोई बनाना वगैरह नौकरी-चाकरी करके पेट भरता है, जिसमें ब्राह्मणोचित शान्ति, क्षमा, सरलता, संयम (मन और इंद्रियों को वश में रखना) आदि गुण नहीं हैं, वह शूद्र ही है, ब्राह्मण नहीं।

प्र० : इस शास्त्रीय सिद्धान्त को आजकल लोग नहीं मानते और न उसपर आचरण करते हैं, इसलिए इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रमाण दीजिए।

उ० : महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से और भारद्वाज ने भृगु से इसी विषय में प्रश्न किया है। ब्राह्मणादि के लक्षण बताते हुए (जिनको ऊपर लिखा जा चुका है) धर्मराज और भृगु ने कहा—

शूद्रे चैतद् भवेल्लक्ष्म, द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो, ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च॥

—वनपर्व, अ० १८०; शांतिपर्व, अ० १८६

न कुलेन न जात्या वा, क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत् ।
चाण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणो यक्षपुङ्गव ।।

—वनपर्व, ३१३

अर्थात् यदि ये सत्य, दान, क्षमा, शील आदि लक्षण ब्राह्मण कुल में उत्पन्न पुरुष के अन्दर न पाए जाएं, और शूद्र कुल में पैदा हुए पुरुष के अन्दर दिखाई देवें, तो वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं, और वह शूद्र शूद्र नहीं । किन्तु जिनमें वे गुण पाए जाएं वे ब्राह्मण, और जिनमें वे गुण न पाए जाएं वे शूद्र हैं । ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता, किन्तु ब्राह्मणों के लिए बताए गुण, कर्मों के धारण करने से ही पुरुष ब्राह्मण बनता है । यदि किसी चाण्डाल कुल के अन्दर पैदा हुए पुरुष में भी ब्राह्मण के गुण पाए जाएं तो वह निश्चय से ब्राह्मण ही है । इसी बात को मनुस्मृति में बताया गया है--

शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु, विद्याद्वैश्यात्तथैव च ।।

मनु०, १०।६५

इसका मतलब यह है कि एक शूद्र कुल में उत्पन्न पुरुष भी ब्राह्मण बन सकता है, यदि वह ब्राह्मण के गुण, कर्मों को धारण करे; और उन गुणों को न धारण करने से ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ पुरुष भी शूद्र बन जाता है । ऐसे ही क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णों में भी गुण, कर्म के कारण परिवर्तन हो सकता है ।

ऐसे सैकड़ों वचनों को उद्धृत किया जा सकता है, जिनसे साफ पता लगे कि ब्राह्मण, क्षत्रियादि चार जातियां नहीं जो जन्म पर आश्रित हों और बदल न सकें, बल्कि ये वर्ण हैं जिनका

ग्राधार गुण, कर्म पर है ग्रौर जिनमें परिवर्तन इसी जन्म में हो सकता है।

प्र० : क्या इसके कोई पुराने ज़माने के उदाहरण भी मिलते हैं कि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी ब्राह्मण बन सकते हैं, ग्रौर ब्राह्मण वगैरह भी शूद्र हो सकते हैं ?

उ० : इसके सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं, जिनमें से थोड़े-से यहां दिए जाते हैं। विश्वामित्र क्षत्रिय कुल में पैदा होकर भी तप ग्रौर विद्या के कारण ब्राह्मण बन गए। वसिष्ठ एक वेश्या के पुत्र होकर प्रसिद्ध ऋषि ग्रौर सूर्य वंशी राजाग्रों के कुलगुरु बन गए। पराशर मुनि (वेदव्यासजी के पिता) एक चाण्डाली के पुत्र होकर भी बड़े ऋषि बन गए। महाभारत, वेदान्तशास्त्र ग्रादि के बनानेवाले वेदव्यासजी सत्यवती नामक मल्लाह की लड़की के पुत्र होकर भी सारे संसार में प्रसिद्ध ग्रौर पूजनीय ऋषि कहलाए।

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः।
मृगिजोऽथर्ष्यश्रृङ्गोऽपि वसिष्ठो गणिकात्मजः॥
…बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्वमद्विजाः।

भविष्यपुराण, **ग्र० ४३**, इत्यादि श्लोक इस विषय में स्पष्ट हैं।

मतंग चाण्डाल कुल में पैदा होकर भी ग्रपने गुणों के कारण ऋषि बन गए। कण्व ग्रौर कश्यप ऋषि के उपदेश से शुद्ध होकर मिस्र देश (जिसे ग्रब इजिप्ट कहते हैं) के १०० म्लेच्छ ब्राह्मण बन गए, ऐसा भविष्यपुराण प्रति सर्ग पर्व ३ । ४ । २० में लिखा है—

मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः, काश्यपेनैव शासिताः।
संस्कृताः शूद्रवर्णेन, ब्रह्मवर्णमुपागताः॥

शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम् ।।
यज्ञैश्च पूजयामासुः देवदेवं शचीपतिम् ।।
सहस्रं तु स्मृता, संख्या, पुरुषाणां द्विजन्मनाम् ।।

अन्य उदाहरण इस विषय में दिए जा सकते हैं, पर विस्तार के भय से इतने ही पर्याप्त हैं। पृषध्र को, जो क्षत्रिय कुल में पैदा हुआ था, गुरु और गोवध के कारण शूद्र कर दिया--

पृषध्रस्तु गुरुगोवधाच्छूद्रत्वमगमत् ।।

--मार्कण्डेय पुराण, ११ । २ । २५

शौनक और अंगिरा ऋषि के पुत्रों में से अपने कर्मों के कारण कुछ ब्राह्मण, कुछ क्षत्रिय, कुछ वैश्य और कुछ शूद्र बने और कहलाए--

पुत्रो गृत्समदस्यासीच्छुनको यस्य शौनकः । ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव, वैश्याः शूद्रास्तथैव च । एतस्य वंशसम्भूता विचित्राः कर्मभिर्द्विजाः ।।

वायु० पु० उ०, ३ ।५

यदि ब्राह्मण आदि जातियां हों, तो ऐसा परिवर्तन कभी नहीं हो सकता।

प्र० : गुण-कर्म पर आश्रित वर्ण-व्यवस्था के स्थान पर जाति-भेद प्रचलित होने से क्या नुकसान हुआ है ?

उ० : इस जाति-भेद वा जात-पांत के कारण वैर-विरोध और भेद-भाव बहुत बढ़ गया है, एकता नष्ट होकर आपस में फूट फैल गई है, ऊंची जाति में पैदा होने का अभिमान बढ़ गया है।

ब्राह्मण अपने कर्मों का पालन न करते हुए भी ब्राह्मण कुल में पैदा होने से ब्राह्मण ही रह सकते हैं, और पूजे जा

सकते हैं—इस भाव ने कर्तव्य-बुद्धि को नष्ट कर दिया है तथा अपने मनमाने अधिकारों के लिए लड़ना लोगों को सिखा दिया है, जिनके कारण लोग हज़ारों हिस्सों में बंट गए हैं और मिल कर कोई भी काम प्रेम से नहीं कर सकते। इसलिए इस झूठे जात-पांत को तोड़कर सच्चे वर्णधर्मों का अपनी-अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार सबको पालन करना चाहिए।

पाठ ६

आश्रम-धर्म

प्रश्न : मनुष्य की साधारण आयु शास्त्रों में कितनी मानी गई है?

उत्तर : मनुष्य की साधारण आयु सौ साल की मानी गई है जिसके लिए संध्या में प्रतिदिन प्रार्थना की जाती है "**जीवेम शरदः शतम्**" अर्थात् हम कम से कम सौ साल तक जीएं। इसलिए प्रसिद्ध है कि "**शतायुर्वैपुरुषः**" अर्थात् पुरुष की उमर सौ साल की है, वा होनी चाहिए।

प्र० : इस उमर को कितने भागों में बांटा गया है?

उ० : चार भागों में।

प्र० : उन चार भागों को किस नाम से कहा जाता है?

उ० : उन चार भागों को आश्रम कहते हैं।

प्र० : इन चार आश्रमों के नाम क्या हैं?

उ० : इन चार आश्रमों के नाम क्रम से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास हैं।

प्र० : इन चार आश्रमों में जीवन को बांटने के क्या उद्देश्य और लाभ हैं?

उ० : इन चार ग्राश्रमों में जीवन को बांटने के उद्देश्य ये हैं— मनुष्य ग्रपने-ग्रापको ऊंचा उठाता जाए ग्रौर सब प्रकार की उन्नति करता जाए, जो धीरे-धीरे ही हो सकती है। जब किसी दूर की जगह जाना हो तो रास्ते में कुछ मंजिल वा पड़ाव करने पड़ते हैं, जिनपर ठहरते-ठहरते ग्रासानी से ग्रादमी ग्रपने उद्देश्य तक पहुंच जाता है। इसी प्रकार मनुष्य जीवन के ग्रंतिम उद्देश्य तक पहुंचने के लिए इन चार ग्राश्रमों को जीवन की चार मंज़िलें समझना चाहिए।

प्र० : मनुष्य जीवन का ग्रन्तिम उद्देश्य क्या है ?

उ० : मनुष्य-जीवन का ग्रन्तिम उद्देश्य सब दु:ख, ग्रज्ञान ग्रौर ग्रशान्ति से छूटकर परम ग्रानन्द रूपी मुक्ति को प्राप्त करना है, जिसमें सदा सुख, शान्ति ग्रौर ग्रानन्द रहते हैं ग्रौर सब बन्धन कट जाते हैं।

प्र० : 'ब्रह्मचर्य' का ग्रर्थ क्या है ग्रौर कितने साल तक ब्रह्मचर्याश्रम में रहना चाहिए ?

उ० : ब्रह्म का ग्रर्थ पहले भी बताया जा चुका है, वह ईश्वर ग्रौर वेद है। चर्य का ग्रर्थ ज्ञान प्राप्त करना ग्रौर उसमें विचरण करना व सदा रहना है। इसलिए ब्रह्मचर्य शब्द का ग्रर्थ ईश्वर ग्रौर वेद के ज्ञान को प्राप्त करना है ग्रौर सदा ईश्वर को याद रखते हुए सब काम करना है। ग्रपने को सब प्रकार से पवित्र रखना ग्रौर ग्रपनी इन्द्रियों को काबू में रखना इत्यादि बातें इसके लिए ज़रूरी हैं। कम से कम २५ साल की ग्रायु तक हरेक युवक को ग्रौर १६ साल की ग्रायु तक हरेक कन्या को ब्रह्मचर्याश्रम में रहना चाहिए। इस उम्र से पहले भूलकर भी विवाह न करना चाहिए।

प्र० : ब्रह्मचारी के मुख्य धर्म क्या हैं ?

उ० : ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी का सबसे बड़ा कर्तव्य यह है कि वह अपने शरीर, मन और आत्मा की शक्तियों को बढ़ाने और अपने को हर तरह से पवित्र रखने का प्रयत्न करे। शरीर की पवित्रता के लिए रोज़ नहाना, वाणी की पवित्रता के लिए सच्ची, मीठी और हितकारी बातों का ही बोलना और मन की पवित्रता के लिए मन में सदा शुद्ध उत्तम भावों का रखना ज़रूरी है। सवेरे उठकर उसे नित्य कर्म—व्यायाम, स्नान, सन्ध्या-वन्दन, हवन आदि श्रद्धापूर्वक करने चाहिएं। सादा, सात्त्विक भोजन ही उसे करना चाहिए । मांस, शराब, खटाई, लाल मिर्च, ज़्यादा खारी और कसैली तथा बासी चीज़ें, गांजा, भांग, अफीम, चरस आदि मादक पदार्थों का उसे कभी सेवन न करना चाहिए । आचार्य गुरुजनों की धर्मानुसार आज्ञाओं का उसे नम्रता से पालन करते हुए वेद-शास्त्र और सब विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। सब स्त्रियों को माता वा बहिन की दृष्टि से देखना चाहिए। नाटक, सिनेमा तथा शहर के खराब वायुमण्डल से दूर रहना चाहिए । ब्रह्मचारी का जीवन सादा और तपस्वी, अर्थात् सर्दी-गर्मी इत्यादि को सहन करने वाला होना चाहिए। उसे गुरुकुल में वास करते हुए आचार्य को पिता और विद्या को माता समझना चाहिए । अपने माता-पिता आदि सम्बन्धियों के प्रति भी मोह वा बहुत अधिक प्रेम न रखना चाहिए। काम, क्रोध, लोभ, भय, शोक, ईर्ष्या, आलस्य, द्वेष आदि दुर्गुणों का त्याग करते हुए उसे सत्य-निष्ठ, त्यागी, तपस्वी, विद्वान, धर्मात्मा, ईश्वरभक्त,

जितेन्द्रिय बनने का सदा यत्न करना चाहिए।

प्र० : ब्रह्मचर्य से क्या लाभ है ?

उ० : ब्रह्मचर्य से शरीर, मन और आत्मा की शक्ति बढ़ती है; जैसे कि श्री भीष्मपितामह, श्री स्वामी शंकराचार्य, स्वामी आनन्द तीर्थ (श्रीमध्वाचार्य), ऋषि दयानन्द सरस्वती आदि महापुरुषों के जीवन से स्पष्ट प्रतीत होता है। उन्होंने मरने तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया था। ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य मौत के डर से ऊपर उठ जाते हैं और मृत्यु पर विजय पा लेते हैं। वेद में बतलाया गया है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघनत ।।

अथर्व०, ११०।५।१९

अर्थात् ब्रह्मचर्य और तप के प्रताप से सत्यनिष्ठ विद्वान लोग मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

प्र० : गृहस्थाश्रम वालों के मुख्य कर्तव्य क्या हैं ?

उ० : गृहस्थाश्रम में रहने वालों के मुख्य कर्तव्य ये हैं कि आपस में प्रेमपूर्वक बर्ताव करें। सब मिलकर उत्तम कार्यों के करने में तत्पर रहें। पति एक पत्नीव्रत का और पत्नी पतिव्रत धर्म का पालन करे। मर्यादा, नियम और संयम में रहकर अपने सब कर्तव्यों का पालन करें। पति-पत्नी एक-दूसरे को एक ही शरीर के हिस्से समझते हुए सदा प्रेम से रहें। सब धर्म-कार्यों के करने में एक-दूसरे की सहायता करें। पुत्र तथा पुत्रियों को उत्तम विद्या दिलाकर उन्हें सदाचारी, धर्मात्मा और परोपकारी बनाने का सदा प्रयत्न करें। स्वार्थ को त्यागकर दानशील बनें।

प्र० : वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश का समय कौन-सा है, तथा वानप्रस्थी

के कर्तव्य क्या हैं ?

उ० : वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश का समय साधारणतया पचास वर्ष के बाद है, जबकि संतान की संतान हो जाए। गृहस्थ का अनुभव लेने के बाद हरेक पुरुष और स्त्री को वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करके अपनी मानसिक और आत्मिक शक्ति तथा ज्ञान को बढ़ाना और गुरुकुल आदि में रहकर पढ़ाने वगैरह तथा दूसरे सेवा के कार्यों में अपने को लगाना चाहिए। ईश्वर-भक्ति, ध्यान-योग तथा वेदादि शास्त्रों के मनन में अपने समय को विशेष रूप से लगाना चाहिए। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, शान्ति, इन्द्रियनिग्रह आदि को उसे विशेष रूप से धारण करना चाहिए। अपने ज्ञान और अनुभव से उसे दूसरे को यथाशक्ति लाभ पहुंचाना चाहिए।

प्र० : वानप्रस्थ आश्रम की आजकल क्या ज़रूरत है, और इससे क्या लाभ है ?

उ० : यदि पुराने ज़माने की तरह लोग पचास वर्ष की उम्र के बाद वानप्रस्थी बनने का नियम बना लें, तो गुरुकुल तथा दूसरी उत्तम संस्थाएं चलाना बड़ा आसान हो जाए। आजकल की तरह विद्वान, अनुभवी, त्यागी कार्यकर्ताओं की कमी इन संस्थाओं के चलाने वालों को अनुभव नहीं होगी। इस तरह शिक्षा और समाज का काम बड़ी अच्छी तरह तथा आसानी से चलता जाएगा। वृद्ध लोगों को जो शान्ति ऐसा करने से प्राप्त होगी, उसका विशेष रूप से यहां वर्णन करने की ज़रूरत नहीं।

प्र० : संन्यास शब्द का अर्थ क्या है, और संन्यासी के कर्तव्य क्या हैं।

उ० : संन्यास शब्द का अर्थ सब बुराइयों का त्याग करना है। संन्यासी उसको कहते हैं जो सब बुरे कर्मों तथा निज स्वार्थ को

छोड़कर ईश्वर के ध्यान और परोपकार में सदा लगा रहता है, जो धन, पुत्र और यश की इच्छा से ऊपर उठ जाता है, जो निर्भय होकर सब जगह धर्म का प्रचार और अधर्म, अन्याय तथा अत्याचार का घोर विरोध करता है, जो सब प्राणियों पर प्रेम-दृष्टि रखता है, चक्रवर्ती राजा तक को अधर्म का काम करते हुए देखकर जो डांट सकता है, ऐसे सच्चे संन्यासियों की संख्या जितनी अधिक होगी उतनी ही जल्दी संसार का सुधार और उद्धार होगा।

पाठ ७

वैदिकधर्म की मुख्य शिक्षाएं

प्रश्न : वैदिकधर्म की ईश्वर-विषयक क्या शिक्षा है ?

उत्तर : वैदिकधर्म में जो ईश्वर का स्वरूप बताया गया है, उसे हम प्रथम पाठ में लिख चुके हैं। उसे सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एक ईश्वर की ही पूजा करनी चाहिए और किसीकी नहीं, यह वैदिकधर्म की मुख्य शिक्षा है। उस परमेश्वर के बारे में वेद बतलाते हैं।

य एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः । अथर्व०, २।२।१

अर्थात् एक ईश्वर ही पूजा के योग्य है।

प्र० : वेदों में तो अग्नि, मित्र, वरुण आदि बहुत-से देवों की पूजा का विधान पाया जाता है, ऐसे बहुत-से विद्वान बताते हैं। क्या उनका विचार ठीक है ?

उ० : नहीं, ऐसा विचार बिलकुल अशुद्ध है। वेदों में आए हुए अग्नि, मित्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि शब्द ईश्वर के ही वाचक हैं।

ऋग्वेद में साफ बताया है—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति । ऋ०,१।१६४।४६

उस एक ही परमेश्वर को विद्वान बहुत-से नामों से पुकारते हैं। जैसे एक ही मनुष्य को उसका भाई भाई के नाम से, पिता पुत्र के नाम से, पुत्र पिता के नाम से, भतीजा चाचा के नाम से और भांजा मामा के नाम से पुकारता है, वैसे ही परमेश्वर के हज़ारों गुण होने के कारण विद्वान लोग उसे हज़ारों नामों से पुकारते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि नाम इसी तरह उसके बहुत-से गुणों को सूचित करते हैं।

प्र० : क्या वेदों में मूर्तियों की पूजा का विधान है ?

उ० : नहीं, वेदों में एक ही **सर्वव्यापक, सर्वज्ञ,** सर्वशक्तिमान परमेश्वर की पूजा की आज्ञा है, जिसके विषय में बताया है कि वह बिलकुल निराकार है (अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरम्—यजु०, ४०।८) उसका किसी तरह का शरीर नहीं। जिसका शरीर होता है वह सर्वव्यापक और पूर्ण नहीं हो सकता। जब परमेश्वर का शरीर ही नहीं तो उसकी मूर्ति कैसे बन सकती है ? इसलिए वेद में कहा है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥ यजु० ३२।३

अर्थात् जिस परमेश्वर की बड़ी महिमा है, उस सर्वव्यापक परमात्मा की मूर्ति नहीं हो सकती।

प्र० : परमेश्वर निराकार है, तो भी धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए वह अवतार धारण करता है, ऐसा बहुत-से लोग मानते हैं। क्या यह बात ठीक और वेदानुकूल है ?

उ० : यह बात ठीक और वेदानुकूल नहीं है। जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान है, तो क्या वह शरीर धारण किए बिना धर्म की

रक्षा और अधर्म का नाश नहीं कर सकता ? ईश्वर न कभी पैदा होता है और न मरता है, वह तो सदा ही एक जैसा रहता है। वेद में उसे 'अज' के नाम से पुकारा गया है, जिसका अर्थ है—कभी न पैदा होने वाला। उसके विषय में वेद कहते हैं—

स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।

अथर्व०, १०।८।१

अर्थात् हम उस सबसे बड़े परमेश्वर को नमस्कार करते हैं जिसमें केवल सुख ही सुख रहता है और दुःख का नामो-निशान भी नहीं है। यह बात और किसी भी पुरुष के विषय में नहीं कही जा सकती, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो। असल में ईश्वर की कृपा से जो धर्मात्मा पुरुष संसार में उत्पन्न होकर लोगों के सामने अच्छा आदर्श रखते हैं, उन्हें ही लोग श्रद्धा-भक्ति के कारण 'अवतार' के नाम से पुकारने लगते हैं। ईश्वर कभी शरीर धारण नहीं करता। श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि उच्च कोटि के महात्मा पुरुष थे।

प्र० : ईश्वर की पूजा कहां और कैसे करनी चाहिए ?

उ० : ईश्वर के निराकार होने के कारण उसकी मूर्ति बनाकर आवाहन करना (घण्टी बजाकर बुलाना), फूल चढ़ाना, आरती करना, भोग लगाना, चन्दन मलना आदि कार्य बिलकुल व्यर्थ हैं; उसकी पूजा तो हृदय में ही हो सकती है क्योंकि वह हृदय में व्यापक है। प्रेम से परमात्मा को पिता-माता की तरह समझकर भजन और ध्यान करना ही उसकी पूजा है। साथ ही परमात्मा के बनाए सब प्राणियों के साथ प्रेम करना और

खासकर अनाथों, गरीबों और दुखियों की हर तरह से सहायता करना—यही परमेश्वर की सच्ची पूजा है। इसीलिए श्रीकृष्ण महाराज ने भगवद्गीता में कहा है—

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

गीता, अ० १८।४६

अर्थात् अपने अच्छे काम से भगवान की पूजा करके मनुष्य मुक्ति या परम आनन्द को पाता है।

प्र० : वैदिकधर्म की दूसरी शिक्षा क्या है ?

उ० : वैदिकधर्म की दूसरी शिक्षा है—सब मनुष्यों को भाई और परमात्मा को पिता-माता समझकर सबकी भलाई के लिए प्रेमपूर्वक यत्न किया जाए। जन्म से ऊंच-नीच का अभिमान करना और किसीको भी अस्पृश्य व अछूत समझना वैदिक-धर्म की शिक्षा के विरुद्ध है।

प्र० : वैदिकधर्म की तीसरी शिक्षा क्या है ?

उ० : वैदिकधर्म की तीसरी शिक्षा कर्मों का नियम है, जिसका मतलब यह है कि हम जैसा काम करते हैं वैसा ही हमें फल मिलता है। बुरे काम करने से हमें पीछे पछताना पड़ता है और उसके परिणाम दुःख, शोक, अशान्ति आदि होते हैं। अच्छे काम करने से सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है। हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि ईश्वर न्यायकारी है और दुनिया में झूठ और धोखा देर तक नहीं चल सकता। अन्त में उसकी पोल खुल जाती है। विजय तो ज़रूर सत्य की ही होती है, जैसाकि ऋषियों ने कहा है—

सत्यमेव जयते नानृतम्। —मुण्डकोपनिषत्

इसलिए हमें कभी भी सत्य और न्याय के मार्ग को न छोड़ना

चाहिए, चाहे ऐसा करने में कितने भी कष्ट उठाने पड़ें। न्यायकारी ईश्वर की दया से अन्त में हमें अवश्य अच्छा फल मिलेगा।

प्र० : क्या कर्मों का फल इसी एक जन्म में मिल जाता है, या दूसरे भी जन्म लेने पड़ते हैं ?

उ० : सारे कर्मों का फल इसी जन्म में ही नहीं मिल जाता। उसके लिए कई जन्म लेने पड़ते हैं, ताकि कई तरह का अनुभव प्राप्त हो सके, जो एक जन्म में कभी सम्भव नहीं हो सकता।

प्र० : इस बात का क्या प्रमाण है कि कई जन्म होते हैं ? हमें तो अपने और किसी भी जन्म का हाल याद नहीं।

उ० : केवल याद न रहने का यह मतलब नहीं कि पूर्वजन्म होता ही नहीं। अगर तुमसे यह पूछा जाए कि परसों तुमने क्या खाया था तो तुममें से बहुतों को याद न होगा, पर क्या इसका यह मतलब है कि तुमने कुछ नहीं खाया था ? अनेक जन्म होने के सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं।

एक ओर ऐसे लोग हैं जिनको सब तरह आराम हासिल है और किसी तरह की चिन्ता नहीं; जिनके शरीर, मन, बुद्धि सब अच्छे हैं। दूसरी ओर लाखों नहीं, बल्कि करोड़ों ऐसे हैं जो बिलकुल गरीब हैं, जिनको पेट-भर एक समय खाना भी नसीब नहीं होता; जो लूले, लंगड़े, अन्धे व बहरे हैं अथवा जिनका दिमाग कुछ काम नहीं करता। यदि परमेश्वर न्यायकारी है और सब मनुष्य उनके समान पुत्ररूप हैं, तो दुनिया में यह विषमता क्यों दिखाई देती है ? इसका कारण सिवाय मनुष्यों के अपने पहले जन्म के किए हुए अच्छे या

बुरे कामों के और कुछ नहीं हो सकता। बहुत-से बालक बिलकुल छोटी आयु में ही बड़े कवि, गायक और विद्वान बन जाते हैं, इसका कारण भी उनके पूर्वजन्म के संस्कार ही मानने पड़ेंगे। अगर उस पुनर्जन्म के सिद्धान्त को न माना जाए तो परमेश्वर पर अन्याय और पक्षपात का दोष आएगा, जिसे कोई भी आस्तिक स्वीकार नहीं कर सकता। पिछले जन्म के वृत्तान्त को याद रखने वाले भी कितने ही बालक पाए जाते हैं, जिनके बताए वृत्तान्तों की सचाई की जांच की जा चुकी है। कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में ९ वर्ष की लड़की शान्तिदेवी ने पूर्वजन्म की घटनाओं का जो वर्णन किया था वह आश्चर्यजनक था, जिसकी सचाई प्रमाणित हुई थी। अभी बरेली के मुस्लिम परिवार के एक ५ वर्ष के करीमुल्लाह नामक बालक और छतरपुर (म० प्र०) की एक कन्या स्वर्णलता के पूर्वजन्म की स्मृति के स्पष्ट उदाहरण समाचारपत्रों में प्रकाशित हुए हैं, जिनकी यथार्थता की जांच की जा चुकी है।

प्र० : यदि कर्मफल का नियम ठीक हो, तो तीर्थस्थान व यात्रा से पापनाश के विश्वास को कैसे ठीक माना जा सकता है।

उ० : गंगा, यमुना, सरस्वती, कावेरी, गोदावरी आदि नदियों में स्नान करने अथवा हरिद्वार, द्वारिका, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी इत्यादि तीर्थस्थानों की यात्रा करने से किए हुए पाप धुल जाते हैं, यह विश्वास वेद और युक्ति के बिलकुल विरुद्ध है। वास्तव में किए हुए पापों का फल हमें अवश्य भोगना ही पड़ता है। उसे भोगे बिना हमारा किसी तरह भी छुटकारा नहीं हो सकता। सत्य, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह, भूत-दया, मन की पवित्रता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि ही सच्चे तीर्थ हैं,

जिनकी सहायता से मनुष्य संसार-रूपी समुद्र को पार कर सकता है। जैसाकि महाभारत में कहा है—

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं, तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थम्, अहिंसा तीर्थमुच्यते ।।
सर्वभूतदया तीर्थं, तीर्थमार्जवमेव च ।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं विशुद्धिर्मनसः पुनः ।।

यही श्लोक पद्मपुराण उत्तर खण्ड अ० २३७ में भी आए हैं।

अर्थात् सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियों को वश में रखना तीर्थ है, ब्रह्मचर्य बड़ा भारी तीर्थ है, सरलता तीर्थ है, सारे प्राणियों पर दया करना तीर्थ है, सबसे बड़ा तीर्थ तो मन को शुद्ध व पवित्र रखना है। इन सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, चित्त-शुद्धि आदि के बिना कभी किसीको मुक्ति व दुःख से छुटकारा प्राप्त नहीं हो सकता।

प्र० : वैदिकधर्म की चौथी शिक्षा क्या है ?

उ० : वैदिकधर्म की चौथी शिक्षा सम-विकास अथवा अपने शरीर, मन, आत्मा आदि की सब शक्तियों को बढ़ाने का यत्न है। वैदिकधर्म इस बात पर ज़ोर देता है कि हमें अपनी सब शक्तियों को बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। साथ ही वह इसके साधन बताता है। व्यायाम को ठीक तौर पर करने से शरीर की शक्ति बढ़ती है। अच्छी-अच्छी पुस्तकों के पढ़ने और विचार करने से मन की शक्ति बढ़ती है। ईश्वर का ध्यान करने और योग का अभ्यास करने से आत्मा की शक्ति बढ़ती है। श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र, ऋषि दयानन्द सरस्वती जैसे महापुरुषों को हमें सम-विकास के लिए आदर्श रखना चाहिए।

प्र० : वैदिकधर्म की पांचवीं शिक्षा क्या है ?

उ० : वैदिकधर्म की पांचवीं शिक्षा है—यज्ञ की भावना को पैदा करना और बढ़ाना। 'यज्ञ' का अर्थ गरीब पशुओं को आग में डालना नहीं है—जैसाकि अज्ञान से कई लोग समझते हैं—बल्कि सेवा और स्वार्थ-त्याग के भाव को धारण करना है। वेदों में यज्ञ को बड़ा धर्म बताते हुए कहा है कि उसीके द्वारा विद्वान और धर्मात्मा लोग भगवान को प्राप्त करते हैं।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः। यजु०, ३१।१६

प्र० : यज्ञ शब्द का अर्थ क्या है ?

उ० यज्ञ शब्द यज् धातु से बनता है, जिसके तीन अर्थ हैं—

(१) देवपूजा, (२) संगतिकरण और (३) दान।

देवपूजा का मतलब है—धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ विद्वानों का आदर करना और साथ ही परमात्मा की पूजा करना।

संगतिकरण का अर्थ लोगों में एकता व मेल-जोल पैदा करना या मिलकर अच्छे काम करना है, जिससे सबकी उन्नति हो सके।

दान का अर्थ गरीबों, अनाथों और दुखियों तथा अच्छी संस्थाओं की धन से सहायता करना है।

इस प्रकार यज्ञ के अन्दर सब अच्छे काम, जो दूसरों की भलाई के लिए किए गए हों, आ जाते हैं। पांच महायज्ञों की व्याख्या हम अगले पाठ में करेंगे।

वैदिकधर्म गीत

वैदिकधर्म हमारा अनुपम, वैदिकधर्म हमारा।
यह है जिसने कोटि जनों को, है इस जग में तारा॥

एकेश्वर पूजा सिखलाता, भेद-भाव को दूर भगाता।
प्राणिमात्र से प्रेम बढ़ाता, प्राणों से बढ़ करके प्यारा ।।

ज्ञान कर्म शुभ भक्ति मिलाता, श्रद्धा मेधा मेल कराता।
अन्धकार को दूर हटाता, है यह हृदय उजारा ।।

बुद्धि-विरुद्ध नहीं कुछ इसमें, व्यष्टि-समष्टि मेल है इसमें।
त्याग-भोग मिल जाते इसमें, मत-पन्थों से न्यारा ।।

सब हैं ईश्वर पुत्र समान, कल्पित-ऊंच-नीच नहिं जान।
करो देव का गुण गणगान, वह भवसागार तारन हारा ।।

जो करता है वह भरता है, अटल नियम यह नित रहता है।
आत्मा नित्य नहीं मरता है, सिखला निर्भय करने हारा ।।

यज्ञ धर्म है श्रेष्ठ महान, करता है सबका कल्याण।
इसके बिना नहीं उत्थान, यह है शुभ उन्नति का द्वारा ।।

समझो सबको मित्र समान, गुण कर्मों के कारण मान।
कर लो वेदामृत का पान, जो सन्ताप विनाशन हारा ।।

आओ आर्य बनें हम सारे, कर्त्तव्यों को पालन हारे।
प्रभु विश्वासी कभी न हारे, जिसने सबका दुःख निवारा ।।

बनें आर्य जग आर्य बनावें, न्याय सत्य अनुराग बढ़ावें।
सच्चे ईश्वर पुत्र कहावें, 'सत्य धर्म की जय' हो नारा ।।

पाठ ८

पंचमहायज्ञ संस्कार और पर्व

प्र० : पांच महायज्ञ कौन-से हैं, जिनको करना हरएक गृहस्थ का आवश्यक धर्म है ?

उ० : पांच यज्ञ निम्नलिखित हैं—

१. ब्रह्मयज्ञ, २. देवयज्ञ, ३. पितृयज्ञ ४. बलिवैश्वदेवयज्ञ अथवा भूतयज्ञ, ५. नृयज्ञ अथवा अतिथियज्ञ।

ये सब यज्ञ गृहस्थों को प्रतिदिन करने चाहिए।

ब्रह्मचारियों को ब्रह्मयज्ञ और देवयज्ञ ज़रूर करने चाहिए।

प्र० : ब्रह्मयज्ञ किसे कहते हैं ?

उ० : ब्रह्मयज्ञ का अर्थ सन्ध्या और स्वाध्याय, अर्थात् वेदादि सत्य शास्त्रों को पढ़ना-पढ़ाना है। प्रतिदिन प्रातः और सायं प्रत्येक पुरुष और स्त्री को संध्या अवश्य करनी चाहिए। इसी तरह प्रतिदिन कुछ समय अच्छे धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय में अवश्य लगाना चाहिए।

प्र० : ब्रह्मयज्ञ से क्या लाभ होता है ?

उ० : सन्ध्या के करने से मन शान्त और पवित्र हो जाता है और आत्मिक शक्ति बढ़ जाती है। ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखने से मनुष्य कठिन से कठिन आपत्ति आने पर भी घबराता नहीं है। स्वाध्याय के रखने से अच्छे पवित्र विचार मन में स्थिर हो जाते हैं, जिनसे जीवन को पवित्र बनाने में बड़ी सहायता मिलती है।

प्र० : देवयज्ञ का क्या अर्थ है ?

उ० : देवयज्ञ का अर्थ होम वा हवन है। चन्दन, धूपबत्ती, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों की सामग्री बनाकर घी के साथ उसे अग्नि में डाला जाता है। प्रत्येक घर में यह हवन भी ज़रूर होना चाहिए।

प्र० : हवन से क्या लाभ है ? क्यों घी वगैरह को ऐसे नष्ट किया जाए ?

उ० : हवन के करने से वायु शुद्ध हो जाती है। आग में सामग्री

डालने से सुगन्धि उठती है और सारी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। सामग्री के अन्दर बहुत-से रोग पैदा करने वाले कृमियों को नष्ट करने वाली चीज़ें होती हैं, जो अग्नि में जलकर परमाणु रूप बनकर वायु में मिल जाती हैं और श्वास-प्रश्वास द्वारा हमारे भीतर के विषैले कृमियों का नाश कर देती हैं। इसलिए हवन करना घी को व्यर्थ नष्ट करना नहीं, बल्कि अपना और दूसरों का भला करना है। अगर घर-घर में शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार सवेरे-शाम हवन किया जाने लगे, तो सब लोग स्वस्थ और निरोग हो जाएं। अतः प्रत्येक ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वान-प्रस्थ को हवन ज़रूर करना चाहिए।

प्र० : बलिवैश्वदेवयज्ञ क्या है, और इससे क्या लाभ है ?

उ० : सब प्राणियों पर मित्र-दृष्टि रखते हुए उनको अपना-अपना हिस्सा खाने के लिए देना। गाय, कौवे, कीड़ी इत्यादि सबकी बलि अर्थात् खाने का भाग देना। इस यज्ञ का उद्देश्य यह है कि मनुष्य सब प्राणियों में अपने समान आत्मा को अनुभव करते हुए प्रेम से व्यवहार करना सीखे।

प्र० : पितृयज्ञ किसे कहते हैं, और इससे क्या लाभ है ?

उ० : पितृयज्ञ का अर्थ श्रद्धा-भक्ति से माता-पिता, आचार्य तथा गुरुजनों की पूजा करना है। इस तरह उनका आशीर्वाद मिलता है और उनके प्रति मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करता है।

प्र० : पितर और कितने प्रकार के होते हैं ?

उ० : पितर का शब्दार्थ—रक्षक है। वे शास्त्रों में मुख्यतया पांच प्रकार के बताए गए हैं—

जनकश्चोपनेता च यश्च विद्या प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता, पंचैते पितरः स्मृताः॥

चाणक्यनीति, ५।२२

अर्थात् पिता, आचार्य, विद्या देने वाले अध्यापक, अन्न देने वाला और भय से रक्षा करने वाला, ये पांच पितर कहे जाते हैं।

प्र० : पितृयज्ञ और श्राद्ध एक ही हैं वा अलग-अलग ? क्या मृतक पितरों की तृप्ति के लिए श्रद्धा करना वेद-सम्मत और उचित है ?

उ० : पितृयज्ञ और श्राद्ध एक ही हैं। श्राद्ध का अर्थ है श्रद्धा-भक्ति से माता-पिता तथा गुरुजनों की सेवा करना। यह प्रतिदिन करने के योग्य यज्ञ है। मृतक पितरों की तृप्ति के लिए वर्ष में १५-१६ दिन श्राद्ध करना अथवा ब्राह्मणों को इस ख्याल से भोजन खिलाना कि उनको खिलाने से वह पितरों को पहुंचेगा और ऐसा न करने से वे भूखे मरेंगे, बिलकुल भ्रमपूर्ण और वेद-विरुद्ध विचार है। हरेक आदमी को अपने कर्मों का फ़ल अपने-आप भोगना पड़ता है। ब्राह्मणों का पेट लेटरबक्स नहीं कि उनको खिलाया हुआ भोजन मरे हुए पितरों के पास पहुंच जाए।

प्र० : अतिथियज्ञ किसे कहते हैं ?

उ० : अतिथियज्ञ का अर्थ अतिथियों की, जो विद्वान, धर्मात्मा, सदाचारी और सत्योपदेशक हों, तथा जिनके आने की तथि व तारीख वगैरह निश्चित न हो, उनकी घर में आने पर प्रेम और आदर से सेवा करना है। इन पांच यज्ञों का करना हरेक का परम कर्तव्य है।

प्र० : शास्त्रों में संस्कार कितने बताए गए हैं, और उनका क्या उद्देश्य है ?

उ० : शास्त्रों में १६ संस्कार बताए गए हैं, और उनका उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा पर गर्भ-समय से मृत्यु तक अत्यन्त उत्तम संस्कार व प्रभाव डालना और कर्तव्यों को स्मरण कराकर मनुष्यों की सब प्रकार की उन्नति में सहायता देना है।

प्र० : इन १६ संस्कारों के नाम क्या-क्या हैं, तथा उनके करने का समय कौन-सा है ?

उ० : १६ संस्कारों के नाम निम्नलिखित हैं—

१. गर्भाधान : कम से कम २५ और १६ की आयु में क्रमशः पुरुष और कन्या के विवाह के पश्चात् सन्तानार्थ।
२. पुंसवन संस्कार : गर्भ-स्थिति के दूसरे वा तीसरे मास।
३. सीमन्तोन्नयन संस्कार : गर्भ-स्थिति के चौथे, छठे वा आठवें मास।
४. जातकर्म संस्कार : सन्तान के उत्पन्न होते ही।
५. नामकरण संस्कार : आयु के ११ वें, १०१ वें दिन अथवा दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में।
६. निष्क्रमण संस्कार : आयु के चौथे महीने में।
७. अन्नप्राशन संस्कार : आयु के छठे महीने में।
८. चूड़ाकर्म संस्कार : १ वर्ष या ३ वर्ष की आयु में।
९. कर्णवेध संस्कार : तीसरे या पांचवें वर्ष की आयु में।
१०. उपनयन संस्कार : जन्म से ८ से १२ वर्ष के अन्दर।
११. वेदारम्भ संस्कार : जन्म से ८ से १२ वर्ष के अन्दर।
१२. समावर्तन संस्कार : साधारणतया २५ वर्ष की आयु में।
१३. विवाह संस्कार : कम से कम २५ वर्ष की आयु में पुरुष का और १६ वर्ष की आयु में कन्या का।
१४. वानप्रस्थ संस्कार : ५० वर्ष के पश्चात् सन्तान की सन्तान होने पर।

१५. संन्यास संस्कार : पूर्ण वैराग्य दृढ़ होने पर अथवा लगभग ७० वर्ष की आयु में।

१६. अंत्येष्टि संस्कार : ठीक मृत्यु के पश्चात्।

प्र० : १६ संस्कारों के विषय में आजकल कौन-सी प्रामाणिक पुस्तक है?

उ० : इन १६ संस्कारों के विषय में आजकल, '*संस्कारविधि*' नामक प्रामाणिक पुस्तक है, जिसको ऋषि दयानन्द ने वेद, ब्राह्मण और गृह्यसूत्रादि के आधार पर जनता के लाभार्थ बनाया था।

प्र० : क्या आर्यों को कोई पर्व वा त्यौहार भी मनाने चाहिए? यदि हां तो क्यों और कौन-कौन-से?

उ० : पर्व शब्द '*पर्व पूरणे*' धातु से बनता है, जिसका अर्थ '*पूरयति जनान् आनन्देन*' अर्थात् लोगों को आनन्द से भरपूर कर देने वाला है। इसलिए आर्यों को मनोरंजन तथा महापुरुषों के स्मरण के लिए उत्साहपूर्वक पर्व अवश्य मनाने चाहिए। इन आर्यपर्वों में नवसंवत्सरोत्सव वा संवत्सरेष्टि, श्रीरामनवमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, विजयादशमी (दशहरा), ऋषि दयानन्द बोधरात्रि (शिवरात्रि), ऋषि निर्वाणोत्सव (दीपमाला), पं० लेखराम तृतीया, वसन्तपंचमी, सीताष्टमी, श्रावणी उपाकर्म (जिसे हैदराबाद आर्यसत्याग्रह स्मारक-दिवस के रूप में सन् १९३९ से मनाया जाता है), मकर-संक्रांति व माघी इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका विवरण सार्वदेशिक सभा, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'आर्यपर्व-पद्धति' नामक पुस्तक में देखना चाहिए।

तृतीय भाग

पाठ ९

आर्यसमाज के दस नियम

प्रश्न : आर्य शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर : आर्य शब्द का अर्थ धर्मात्मा, सज्जन, हमेशा धर्म और न्याय के रास्ते पर चलने वाला और कर्तव्य का पालन करने वाला, शान्तचित्त और उदार चरित्र वाला मनुष्य है।

प्र० : इस विषय में कोई प्रमाण दीजिए।

उ० : वसिष्ठ-स्मृति का निम्न श्लोक इस विषय में स्मरणीय है—

कर्तव्यमाचरन् कार्यम्, अकर्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे, स तु आर्य इति स्मृतः।।

अर्थात् जो करने योग्य कामों को हमेशा करता रहे और बुरे कामों को कभी न करे, ऐसे सदाचारी मनुष्य को आर्य कहते हैं। 'शब्द कल्पद्रुम', 'वाचस्पत्य बृहदभिधान' आदि संस्कृत के प्रसिद्ध कोषों में 'आर्य' शब्द के अर्थ 'पूज्यः, श्रेष्ठः, मान्यः, उदारचरितः, शान्तचित्तः, न्याय-पथावलम्बी, सतत कर्तव्य-कर्मानुष्ठाता, धार्मिकः, धर्मशीलः' इत्यादि दिए हैं। वहीं से ऊपर का श्लोक उद्घृत किया गया है।

प्र० : समाज शब्द का क्या अर्थ है ?

उ० : समाज शब्द का अर्थ समूह है, जो सम्+आ+अज अर्थात् जो

मिलकर चारों ओर से प्रगतिशील हो और बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करे। आर्यों के समूह को आर्यसमाज के नाम से पुकारा जाता है, जो मिलकर सद्गुणों के प्रचार और दुर्गुणों तथा कुनीतियों के निवारण का सदा प्रयत्न करे।

प्र० : आर्यसमाज की स्थापना किसने की और कब की ?

उ० : आर्यसमाज की स्थापना ऋषि दयानन्द सरस्वती ने सबसे प्रथम ७ अप्रैल, सन् १८७५ को बम्बई नगर में वैदिकधर्म के प्रचारार्थ और लोक-उपकारार्थ की।

प्र० : आर्यसमाज के दस नियम बताओ।

उ० : (१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(२) परमेश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निराकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसीकी उपसना करनी योग्य है।

(३) वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

(४) सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(५) सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए।

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति करना।

(७) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य बरतना चाहिए।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए। किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए, और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र हैं।

पाठ १०

आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द

प्रश्न : आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द सरस्वती का जन्म कब और कहां हुआ ?

उत्तर : ऋषि दयानन्द का जन्म गुजरात प्रांत के टंकारा गांव में सन् १८२४ में हुआ।

प्र० : उनका पहला नाम क्या था ?

उ० : उनका पहला नाम मूलजी व दयाराम था।

प्र० : मूलजी के पिता-माता का क्या नाम था ?

उ० : मूलजी के पिता का नाम कर्शनजी तिवारी तथा माता का नाम अमृतबाई था।

प्र० : कर्शनजी क्या काम करते थे ?

उ० : कर्शनजी बड़े जमींदार और बैंकर तथा मौरवी राज्य के एक अधिकारी थे।

प्र० : बालक मूलजी के दिल में ज्ञान का उदय कब हुआ और कब मूर्तिपूजा से उनका चित्त हटा ?

उ० : जब बालक मूलजी लगभग १४ साल के थे तो शिवरात्रि को उनके पिता, जो कट्टर शिवभक्त थे, उन्हें मन्दिर में ले गए।

मूलजी ने शिवरात्रि को रात-भर जागने और उपवास रखने का माहात्म्य सुना हुआ था, इसलिए सबके (यहां तक कि अपने पिताजी के) सो जाने पर भी आंखों पर पानी के छींटे डालकर वे जागते रहे। इतने में उन्होंने देखा कि एक चूहा महादेवजी की मूर्ति पर चढ़ी हुई मिठाई को खा रहा है, फिर भी महादेवजी कुछ नहीं कर सकते। बालक के पवित्र, सरल हृदय में शंका उठी कि यह क्या बात है ? जिन महादेवजी के बारे में पुराणों में इतनी कथाएं त्रिपुरादि राक्षसों को त्रिशूल से मारने की बताई गई हैं, वे क्या एक छोटे-से चूहे से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकते ? बालक को जब इसका कुछ जवाब न सूझा तो उसने अपने पिता को जगाकर अपना संदेह उनके सामने रख दिया। उनसे भी इस प्रश्न का कुछ उत्तर न बना और वे मूलजी को धमकाने लगे कि तू ऐसी शंकाएं क्यों करता है। पिताजी के उत्तर से बालक के दिल को ज़रा भी संतोष न हुआ और छोटी-सी आयु में ही उसके मन के अन्दर यह निश्चय कर लिया कि जब तक वह सच्चे महादेव (परमेश्वर) का पता न लगा लेगा तब तक आराम न करेगा। उसी दिन से सरल-हृदय बालक का चित्त मूर्तिपूजा से हट गया।

प्र० : कौन-सी और घटनाएं हुईं जिन्होंने मूलजी के दिल में वैराग्य पैदा कर दिया और आखिर उन्हें घर छोड़ जाने को बाधित कर दिया ?

उ० : जब मूलजी अभी १४-१५ साल के ही थे तो अचानक एक दिन उनकी छोटी बहिन को हैज़ा हो गया और अच्छी से अच्छी दवाई करने पर भी आराम न हुआ और वह मर गई। बस मौत को देखकर और सब तो ज़ोर-ज़ोर से रोने लग गए पर बालक मूलजी एक कोने में खड़े होकर यही सोचते रहे

कि किस तरह इस मौत से छुटकारा हो सकता है ? इसके दो साल बाद उनके चाचा की मृत्यु हो गई। वे मूलजी को बहुत प्यार करते थे। इससे उनका वैराग्य और भी दृढ़ हो गया और उन्होंने, जैसे भी हो सके, मौत से छुटकारा पाने व अमर बनने का पक्का निश्चय कर लिया।

प्र० : मूलजी ने किससे और कब संन्यास लिया और उनका उस समय क्या नाम रखा गया ?

उ० : मूलजी ने स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती नामक एक विद्वान संन्यासी से लगभग २४ साल की आयु में संन्यास लिया और उस समय उनका नाम दयानन्द सरस्वती रखा गया।

प्र० : स्वामी दयानन्दजी के गुरु कौन थे जिनके विशेष प्रभाव से उन्होंने वैदिकधर्म के उद्धार का बीड़ा उठाया ?

उ० : स्वामी दयानन्दजी के पूज्य गुरु स्वामी विरजानन्दजी थे, जो मथुरा में रहा करते थे। उन्हींसे दयानन्दजी ने वेद-वेदांगों को विशेष रूप से पढ़ा तथा उन्होंने ही दयानन्द से गुरु-दक्षिणा के तौर पर यह मांगा कि तुम सर्वत्र वेदों का प्रचार करो, ऋषियों के बनाए उत्तम ग्रंथों को पढ़ने की लोगों को प्रेरणा दो तथा वेद-विरुद्ध सब बातों और रीति-रिवाजों को लोगों से छुड़वा दो।

प्र० : ऋषि दयानन्द ने विद्या समाप्त करके वैदिकधर्म के प्रचार और समाज-सुधार के लिए क्या-क्या काम किए ?

उ० : उन्होंने काशी आदि नगरों के बड़े-बड़े पंडितों से मूर्तिपूजा आदि विषयों पर शास्त्रार्थ किए, जगह-जगह पर विशेषकर कुम्भ आदि के मेलों में वैदिकधर्म पर ज़ोरदार व्याख्यान दिए, वैदिकधर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए बहुत-से ग्रंथ लिखे,

जिनमें से निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध हैं—

(१) यजुर्वेद का संस्कृत में पूरा भाष्य जिसका पण्डितों ने पीछे से हिन्दी में अनुवाद किया।

(२) ऋग्वेद का छः मण्डल ६२ सूक्त तक संस्कृत भाष्य।

(३) आर्याभिविनय—वैदिक प्रार्थनाओं की पुस्तक।

(४) सत्यार्थप्रकाश।

(५) ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका।

(६) संस्कारविधि।

(७) भ्रमोच्छेदन, वेद-विरुद्ध मत-खण्डन इत्यादि कई छोटी पुस्तकें।

(८) जीव-रक्षा और मांस-निषेध-प्रचार के लिए गोकरुणा-निधि। इस पुस्तक द्वारा तथा महारानी विक्टोरिया के नाम लाखों हस्ताक्षरोंसहित आवेदनपत्र द्वारा गोवध को बन्द कराने का भी ऋषि ने प्रशंसनीय प्रयत्न किया।

संस्कृत भाषा के प्रचार के लिए कई स्थानों पर ऋषि ने संस्कृत पाठशालाएं खुलवाईं। अनाथों की रक्षा के लिए फीरोज़पुर में अनाथालय खुलवाया।

मूर्तिपूजा, जन्ममूलक जात-पांत, अस्पृश्यता व अछूतपन, बाल-विवाह, मृतक-श्राद्ध, तीर्थयात्रा इस उद्देश्य से करना कि इससे किए हुए पाप दूर हो जाएंगे, ज़बर्दस्ती विधवा बनाकर जीवन-भर वैसा ही रखना इत्यादि बुराइयों का ऋषि ने विरोध किया और वर्णाश्रम धर्म का सच्चा स्वरूप लोगों के सामने रखा। ब्रह्मचर्य के प्रचार के लिए गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की आदर्श सत्यार्थप्रकाश आदि में विस्तार से प्रकट कर दिया।

आर्यभाषा (हिन्दी) को राजभाषा बनवाने के लिए भी ऋषि दयानन्द ने गतशताब्दी में सबसे अधिक प्रयत्न किया।

प्र० : धर्म-प्रचार के कार्य में ऋषि दयानन्द को क्या कष्ट उठाने पड़े ?

उ० : धर्म-प्रचार के कारण ऋषि दयानन्द को तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़े। स्वार्थी, धूर्त लोगों ने बहुत बार उनको ज़हर दिलाया। उनपर पत्थर, कीचड़, गोबर आदि फेंके और फिंकवाए तथा तरह-तरह से उनको बदनाम और अपमानित करने की कोशिश की। फिर भी ऋषि दयानन्द ने शांत भाव से इन सब कष्टों को सहा और कभी विरोधियों को हानि पहुंचाने का विचार तक मन में नहीं आने दिया।

प्र० : धार्मिक और सामाजिक सुधार के अतिरिक्त क्या ऋषि दयानन्द ने राजनीतिक सुधार के लिए भी कोई प्रयत्न किया।

उ० : ऋषि दयानन्द ने राजधर्म और प्रजाधर्म का वेद आदि सत्य शास्त्रों के आधारपर प्रचार किया। स्वराज्य का महत्त्व लोगों के सामने इन साफ शब्दों में रखा—"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है; अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपात-शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।" (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ८)। इसी तरह स्वदेशी वस्त्रों के धारण पर उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में ज़ोर दिया। देशी राज्यों व रियासतों के राजाओं को सुधारने का उन्होंने अपने जीवन के पिछले वर्षों में विशेष रूप से प्रयत्न किया। स्वावलम्बन का भाव उन्होंने लोगों में खास तौर पर

जगाया। उपनियमों में उन्होंने आर्यों को, जहां तक हो सके, अदालतों में न जाकर आपस में ही निपटारा कर लेने की सलाह दी।

प्र० : ऋषि दयानन्द की मृत्यु कब और कैसे हुई ?

उ० : ऋषि दयानन्द की मृत्यु ३० अक्तूबर, सन् १८८३ ई० दीवाली के दिन अजमेर में हुई। मृत्यु का कारण इस प्रकार वर्णन किया गया है : जोधपुर के राजा का नन्हींजान नामक वेश्या से स्नेह था। ऋषि दयानन्द को, जबकि वे जोधपुर में उस राजा के अतिथि थे, यह बात नागवार गुज़री। उन्होंने उसको फटकार बताई। नन्हींजान ने बदला लेने की ठानी। उसने उनके सेवक को (जिनका नाम जगन्नाथ बताया जाता है) प्रलोभन देकर ज़हर दिला दिया, जिसके प्रभाव से उनके शरीर में फोड़े-फुन्सी हो गए और अन्त में देहान्त हो गया। अन्त समय तक भी ऋषि दयानन्द वेदमन्त्रों द्वारा ईश्वर का भजन तथा प्रार्थना शान्तचित्त से करते रहे—"हे ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की," इत्यादि शब्दों का उच्चारण प्रसन्नतापूर्वक करते हुए ऋषि ने प्राण छोड़े। इस दृश्य को देखकर पं० गुरुदत्त जैसे नास्तिक विचारों के सज्जन भी कट्टर आस्तिक बन गए। ऋषि दयानन्द ने अपने घातक की जान बचाकर उसपर अद्भुत दयालुता दिखाई। ऐसे आदर्श सुधारक योगिवर ऋषि दयानन्द का विस्तृत जीवन-चरित्र सब बालक-बालिकाओं और नर-नारियों को पढ़कर उनके चरण-चिह्नों पर चलने या यत्न करना चाहिए।

पाठ ११

आर्यसमाज का कार्य

प्रश्न : आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य ऋषि दयानन्द ने क्या बताया है ?

उत्तर : "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।" इस छठे नियम द्वारा ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है।

प्र० : इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आर्यसमाज ने क्या-क्या कार्य किए ?

उ० : इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आर्यसमाज ने जो-जो कार्य किए हैं उनका साधारण विवरण निम्न प्रकार है—

अनाथालय	४५	रात्रिपाठशालाएं		१४२
बालक गुरुकुल	२८	हरिजन व दलित विद्यालय		३२२
कन्या गुरुकुल	४	दलितोद्धार सभाएं		४३
संस्कृत पाठशालाएं	३००	शुद्धि सभाएं		३७
बालकों के प्राइमरी स्कूल	१६२	प्रकाशनालय	लगभग	१००
मिडिल स्कूल	१५४	आर्य प्रेस	,,	३०
हाई स्कूल	२००	समाचारपत्र	,,	५०
कालेज	१०	साधु-आश्रम	,,	११
कन्या महाविद्यालय	४	धर्मार्थ औषधालय	,,	१४
कन्याओं के प्राइमरी स्कूल	७००	विधवाश्रम	,,	४१

प्र० : इस समय जगत् में आर्यसमाज लगभग कितने हैं ?

उ० : संसार-भर के आर्यसमाजों की संख्या २५०० है।

प्र० : आर्यप्रचारकों (वैतनिक और अवैतनिक मिलाकर) की संख्या लगभग कितनी है ?

उ० : प्रचारकों की संख्या ६२३ के करीब है।

प्र० : क्या भारत के बाहर भी आर्यसमाज हैं, और प्रचारक वहां कार्य कर रहे हैं !

उ० : भारत के अतिरिक्त पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका, मारिशस, फिजी, ब्रिटिश और डच गायना तथा दक्षिणी अमेरिका, ट्रिनिडाड आदि में बहुत आर्यसमाज हैं, और सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा के साथ सम्बद्ध आर्य-प्रतिनिधि सभाएं भी इन प्रदेशों में स्थापित हो गई हैं। कई आर्यप्रचारक आर्यसंस्कृति, धर्म-प्रचार हिन्दी-प्रचार आदि के कार्यों में वहां लगे हुए हैं।

प्र० : आर्यसमाज का शिक्षा पर वार्षिक खर्च लगभग कितना है ?

उ० : आर्यसमाज का शिक्षा पर वार्षिक खर्च लगभग २० लाख रुपये होता है।

प्र० : धार्मिक और सामाजिक सुधार तथा शिक्षा-प्रसार के अतिरिक्त क्या आर्यसमाज कोई मनुष्य-जाति की सेवा का कार्य भी करता है ?

उ० : हां, आर्य लोग मनुष्य-जाति की सेवा के कार्यों में सदा तत्पर रहते हैं। जहां कहीं अकाल पड़ता है, भूकम्प आता है, बाढ़ आती है, ज्वालामुखी फटता है अथवा अन्य किसी तरह का उपद्रव होता है, तो आर्य लोग उत्साहपूर्वक आगे बढ़ते हैं और जनता की सेवा में लग जाते हैं। इस-बात के बहुत-से उदाहरण आर्यसमाज के इतिहास से दिए जा सकते हैं।

प्र० : क्या आर्यसमाज ने कोई राजनीतिक कार्य भी किया है ?

उ० : यद्यपि सामूहिक रूप से आर्यसमाज का वर्तमान राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं, तो भी वैयक्तिक रूप से बहुत-से आर्य बड़े

उत्साह से त्याग तथा तप के साथ देशोद्धार-सम्बन्धी सब आंदोलनों में विशेष दिलचस्पी सदा दिखाते रहे हैं। आर्यसमाज के मान्य नेता धर्मवीर श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज, पंजाब-केसरी लाला लाजपतरायजी आदि का नाम इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है । उत्तरभारत में उत्तम राजनीतिक कार्यकर्ताओं में से बहुत-से लोग आर्यसमाजी ही हैं ।

प्र० : क्या अस्पृश्यता-निवारण और हरिजनोद्धार के लिए भी आर्य-समाज ने कुछ कार्य किया है ?

उ० : सबसे पहले गतशताब्दी में आर्यसमाज के नेताओं ने ही इस विषय में प्रशंसनीय कार्य शुरू किया। उन्होंने न केवल अस्पृश्यता के रोग को निर्मूल करने का यत्न किया बल्कि दलित व हरिजन लोगों की सब प्रकार की उन्नति के लिए विशेष प्रयत्न करके उन्हें सब धार्मिक और सामाजिक अधिकार दिए। वास्तव में अस्पृश्यता व अछूतपन का पूरा निवारण आर्यसमाज व वैदिकधर्म के सिद्धान्तों के प्रचार से ही हो सकता है। जब तक जन्ममूलक जात-पांत को पूरे तौर पर न हटाया जाएगा, तब तक अछूतपन सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी नहीं हट सकता। आर्य-समाज ने जात-पांत के ढकोसले को हटाकर अछूतपन को हटाने का बहुत प्रशंसनीय काम किया है। गुरुकुलों से कितने ही अछूत कहलानेवाली जातियों के लड़के वेदालंकार, विद्यालंकार बनकर स्नातक हो चुके हैं। हज़ारों ने यज्ञोपवीत आदि पवित्र चिह्न संस्कार द्वारा धारण करके मांस, शराब आदि व्यसन छोड़कर सन्ध्या, हवन-यज्ञ संस्कारादि करने शुरू कर दिए हैं। इतने अच्छे रूप में दलितोद्धार और किसी संस्था की तरफ से नहीं हो सका।

पाठ १२

धर्मवीर आर्यसज्जनों का जीवन-परिचय

(बलिदान-कथा)

प्रश्न : कहा जाता है कि किसी समाज की उन्नति तभी होती है, जब उसमें धर्म अथवा देश की रक्षा के लिए लोग शहीद होने तक को तैयार होते हैं। क्या आर्यसमाज में भी धर्मवीर व शहीद हुए हैं ?

उत्तर : आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द का धर्म के लिए बलिदान हुआ था जिसका वर्णन किया जा चुका है। दूसरा प्रसिद्ध बलिदान धर्मवीर पंडित लेखरामजी का सन् १८९७ में हुआ।

प्र० : पण्डित लेखरामजी ने आर्यसमाज या वैदिकधर्म के लिए क्या काम किया था, और उनका बलिदान क्यों और कैसे हुआ ?

उ० : पण्डित लेखराम 'आर्यमुसाफिर' आर्य-प्रतिनिधि सभा, पंजाब के एक अत्यन्त उत्साही और निर्भय उपदेशक थे। उन्होंने उर्दू भाषा में वैदिकधर्म-सम्बन्धी बहुत-सी पुस्तकें लिखीं और मुसलमानों को पुनर्जन्म आदि पिषयक शंकाओं का बहुत अच्छा उत्तर दिया। उन्होंने ऋषि दयानन्द सरस्वती की एक उत्तम जीवनी भी लिखी। उनके निर्भयतापूर्वक वैदिकधर्म-प्रचार तथा शुद्धि के कार्य से कुछ मुसलमान चिढ़ गए। एक मुसलमान मार्च, सन् १८९७ में उनके पास आया और शुद्ध होने की इच्छा प्रकट की, साथ ही बीमार होने का बहाना भी किया। ६ मार्च, सन् १८९७ को जब पंडित लेखरामजी ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र लिखकर थकावट हटाने के लिए अंगड़ाई ले रहे थे, उस दुष्ट व्यक्ति ने मौका पाकर अपने काले कम्बल में छिपाए छुरे

से उनपर वार कर दिया, जिससे घायल होकर उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज (महात्मा मुंशीरामजी) द्वारा लिखित 'आर्यपथिक लेखराम का जीवन-चरित्र' प्रत्येक आर्यबालक को अवश्य पढ़ना चाहिए।

प्र० : इन दो के बाद कौन-सा बलिदान हुआ?

उ० : इनके बाद पंजाब प्रांत के फरीदकोट रियासत के निवासी श्रीयुत तुलसीरामजी नामक सज्जन का बलिदान स्मरण रखने योग्य है। यह महाशय स्टेशनमास्टर होते हुए, समय निकालकर धर्म-प्रचार में लगे रहते थे। जैनमत का उन्होंने अच्छी तरह अध्ययन किया था और उनके ग्रंथों व सिद्धांतों की वे निर्भय होकर समालोचना किया करते थे, जिससे चिढ़कर कुछ जैनियों ने उन्हें एक दिन रात के समय सड़क पर जाते हुए घेर लिया और मिर्च मिली रेत उनपर फेंककर तथा डण्डे मारकर उन्हें मार डाला।

प्र० : चौथा बलिदान किस सज्जन का, क्यों और कब हुआ?

उ० : चौथा बलिदान म० रामचन्द्र नामक एक जम्बू प्रांतवासी सज्जन का, जो रियासत में खज़ांची का काम करते थे, सन् १९२३ में हुआ। यह महाशय मेघ नामक अछूत कहलाने वाली जाति के उद्धार के लिए बहुत यत्न करते थे। उनके यत्न से दूसरे लोगों ने भी उस विषय में खास कोशिश शुरू कर दी थी, पर कई राजपूतों को यह बात बुरी लगी। उन्होंने इनपर लाठियों से वार कर दिया और उन्हें मारकर ही छोड़ा। इस प्रकार दलितोद्धार और धर्म-प्रचार का पवित्र कार्य करते हुए इनका बलिदान अपने भूले-भटके राजपूत भाइयों के हाथ २६ साल की उमर में हुआ। इनके बलिदान का परिणाम यह हुआ

कि दलितोद्धार का काम खूब ज़ोर-शोर से होने लगा। जिन राजपूत लोगों ने म० रामचन्द्र को मारा था वे खुद आर्यसमाज के बड़े प्रेमी बन गए और इस तरह बीस हज़ार के लगभग मेघों को थोड़े ही समय में आर्यसमाज में शामिल कर लिया गया।

प्र० : पांचवां प्रसिद्ध बलिदान किस आर्य सज्जन का, कब और क्यों हुआ ?

उ० : पांचवां बलिदान पूज्यपाद श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज का दिल्ली में २३ दिसम्बर, १९२६ को अब्दुलरशीद नामक मतांध मुसलमान के हाथों हुआ। इसका विशेष कारण श्री स्वामीजी का शुद्धि-विषयक आन्दोलन को ज़ोर से चलाना था, जिससे मतांध मुसलमान चिढ़ते थे और श्री स्वामीजी को मारने का षड्यंत्र व साज़िश करते रहते थे। श्री स्वामीजी के नाम इस तरह के बहुत पत्र आते थे जिनमें उन्हें शुद्धिकार्य को बन्द करने और ऐसा न करने पर मारे जाने की धमकी दी जाती थी, पर स्वामी श्रद्धानन्दजी एक निर्भय, धर्मवीर संन्यासी थे। वे ऐसी धमकियों की ज़रा भी परवाह न करते हुए धर्म का काम किए चले जाते थे। उनके प्रयत्न से एक लाख से अधिक मलकाने राजपूत, जो बहुत समय पूर्व मुसलमान बनाए जा चुके थे, फिर आर्यधर्म (हिन्दूधर्म) में दीक्षित किए गए। २५ मार्च, १९२६ को असगरी बेगम को उसकी इच्छानुसार शुद्ध करके शांतिदेवी नाम दिया गया। इससे मतान्ध मुसलमान बहुत चिढ़े और श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी तथा उनके साथियों पर ज़बरदस्ती शुद्ध करने का मुकदमा चलाया। इस मुकदमे का फैसला श्री स्वामीजी के पक्ष में हुआ। इससे मुसलमानों का क्रोध और भी बढ़ गया। अन्त में अब्दुलरशीद नामक एक

मुसलमान श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी के मकान पर २३ दिसम्बर, सन् १९२६ को आया। उस समय वे निमोनिया की बीमारी से पीड़ित होकर आरामकुर्सी पर आराम कर रहे थे। उसने पहले तो उनसे इस्लाम के बारे में बातचीत करने का बहाना बनाया। स्वामी ने कहा कि बीमारी के कारण डाक्टरों ने मुझे ज़्यादा बोलने से रोक दिया है, अच्छा होने पर मैं बात-चीत करूंगा। तब उसने पानी पीने को मांगा। पानी पीकर उसने श्री स्वामीजी पर चार गोलियां चलाईं और उनके पवित्र जीवन का अन्त कर दिया।

प्र० : श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी ने आर्यसमाज के लिए क्या-क्या विशेष काम किए थे?

उ० : स्वामी श्रद्धानन्दजी (जिनका पूर्व नाम मुन्शीरामजी था) आर्यसमाज के एक बहुत बड़े नेता थे। उन्होंने अपनी सफल वकालत को छोड़कर आर्यसमाज के कार्य में अपने सारे जीवन को लगा दिया था। ऋषि दयानन्द की आज्ञा का पालन करने के लिए उन्होंने गुरुकुल खोलने का निश्चय किया। इसके लिए यह प्रतिज्ञा की कि जब तक तीस हज़ार रुपये इकट्ठे न कर लूंगा तब तक घर में पैर न रखूंगा। इस प्रतिज्ञा को उन्होंने पूरा किया और अपना तन, मन, धन, आर्यसमाज और गुरुकुल की सेवा के लिए लगा दिया। हरिद्वार के पास कांगड़ी गुरुकुल की उन्होंने सन् १९०२ में स्थापना की। यह एक आदर्श राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रूप में सारे संसार में अब प्रसिद्ध हो चुका है। आर्यसभ्यता, वैदिकधर्म और ब्रह्मचर्य के उद्धार के लिए जितना काम श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने गुरुकुल के द्वारा किया उतना और किसीसे नहीं हो सका। जन्म-

सिद्ध जाति-भेद व जात-पांत, अछूतपन, बाल-विवाह आदि खराब रीति-रिवाजों के दूर करनेवालों में श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी का नाम पहली पंक्ति में सोने के अक्षरों में लिखा जाने योग्य है। उनका जीवन शुद्ध, पवित्र था; निर्भयता और साहस की वे मूर्ति थे। स्वराज्य आन्दोलन में भी उन्होंने बहुत बड़ा भाग लिया था और बड़े-बड़े कष्ट खुशी से सहन किए थे। ऐसा त्यागी-तपस्वी, वीर निर्भय व्यक्ति बनने का यत्न सब बालकों को करना चाहिए।

प्र० : छठा बलिदान किस आर्य सज्जन का, कब और क्यों हुआ ?

उ० : छठा बलिदान लाहौर के प्रसिद्ध आर्यपुस्तकालय के संचालक महाशय राजपालजी का ६ अप्रैल, १९२९ को इलमदीन नामक एक मुसलमान के हाथों लाहौर में हुआ। इसका कारण यह था कि राजपालजी द्वारा प्रकाशित 'रंगीला रसूल' नामक पुस्तक से मुसलमान चिढ़ गए थे।

प्र० : इन बलिदानों के अतिरिक्त अन्य बलिदानों के विषय में कुछ वर्णन कीजिए।

उ० : इसके अतिरिक्त महाराज नाथूरामजी नामक एक सिन्धी आर्य-सज्जन का बलिदान भी कराची में हुआ, जबकि हाईकोर्ट के एक कमरे में न्यायाधीश के सामने एक मुसलमान ने दिन-दहाड़े उनको जान से मार दिया। ऐसे ही इन्दौर रियासत के श्री मेघराजजी, रोहतक ज़िले के भक्त फूलसिंहजी तथा अन्य कई आर्यसज्जनों ने धर्म के लिए प्राणों की बलि दे दी या उन्हें दुष्ट विरोधियों के क्रोध का शिकार बनना पड़ा।

इन सबके जीवन-वृत्तान्त को विस्तार रूप से यहां नहीं दिया जा सकता। अतः धर्मवीर आर्यों की इस बलिदान-कथा

को यहीं समाप्त किया जाता है। बालक-बालिकाओं को ऐसे धर्मवीर आर्यों के जीवनों का बार-बार पाठ करते हुए वीर बनने का यत्न करना चाहिए।

ऐसे बलिदानों के कारण ही आर्यसमाज थोड़े समय में बहुत बड़ी उन्नति कर सका है, इसमें संदेह नहीं।

उदाहरणार्थ, हैदराबाद रियासत में धार्मिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए जो आन्दोलन और धर्मयुद्ध सन् १९२९ में होता रहा, उसमें निम्नलिखित आर्यवीरों ने अपने प्राणों की आहुति दी—

श्री वेदप्रकाशजी, श्री रामजी, पं० श्यामलालजी, श्री धर्मप्रकाशजी, श्री महादेवजी, श्री भीमरावजी, श्री सत्यनारायणजी, श्री व्यंकटरावजी, श्री परमानन्दजी, स्वामी सत्यानन्दजी, श्री विष्णु भगवन्तजी, श्री छोटेलालजी, श्री पाण्डूरंगजी, श्री माधवराजजी, श्री मानूमलजी, श्रीयुत सुनहरा, म० फकीरचन्दजी, श्री मलखानसिंहजी, श्री स्वामी कल्याणानन्दजी, श्री शान्तिप्रकाशजी, श्री खांडेरावजी, श्री बदनसिंहजी, श्री रतीरामजी, ब्रह्मानन्द इत्यादि।[1]

इन सब हुतात्माओं के प्रति हम अपनी श्रद्धांजलि निम्न शब्दों में अर्पित करते हैं।

---

१. इन बलिदानों के विषय में विस्तृत परिचय 'सार्वदेशिक सभा' द्वारा प्रकाशित 'बलिदान' तथा स्वतन्त्रानन्दजी द्वारा लिखित 'आर्यसमाज के महाधन' नामक पुस्तक में दिया गया है।

धर्मवीरों के प्रति श्रद्धांजलि

श्रद्धांजलि अर्पण करते हम, करके उन वीरों का मान ।
धार्मिक स्वतन्त्रता पाने को, किया जिन्होंने निज बलिदान ।।
परिवारों के सुख को त्यागा, युवक अनेकों वीरों ने ।
कष्ट अनेकों सहन किए पर, धर्म न छोड़ा धीरों ने ।।
ऐसे सभी धर्मवीरों के, आगे सीस झुकाते हैं ।
उनके उत्तम गुणगण को हम, निज जीवन में लाते हैं ।।
अमर रहेगा नाम जगत् में, इन वीरों का निश्चय से ।
उनका स्मरण बनाएगा फिर, वीरजाति को निश्चय से ।।
करें कृपा प्रभु आर्यजाति में, कोटि-कोटि हों ऐसे वीर ।
धर्म देशहित जोकि हर्ष से, प्राणों की आहुति दें धीर ।।
जगदीश्वर को साक्षि जानकर, यही प्रतिज्ञा करते हैं ।
इन वीरों के चरण-चिह्न पर, चलने का व्रत धरते हैं ।।
सर्वशक्तिमय दें बल ऐसा, धीर वीर सब आर्य बनें ।
पर-उपकार-परायण निश-दिन, शुभ गुणधारी आर्य बनें ।।

○ ○ ○

मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, क्वीन्स रोड, दिल्ली-६

बालोपयोगी धार्मिक साहित्य

बाल सत्यार्थ प्रकाश	१.००
भारत के महान ऋषि	०.७५
अच्छे बच्चे	०.७५
आदर्श देवियां	०.७५
वैदिक धर्म आर्यसमाज प्रश्नोत्तरी	०.७५
आर्य निबन्धमाला	१.००
सरल रामायण	१.७५
सरल महाभारत	१.००
हमारे त्योहार	१.००
सदाचार की कथाएं	१.५०
महापुरुषों की कथाएं	१.५०
आदर्श कथाएं	१.५०
शिक्षाप्रद कथाएं	१.५०

